VISHVA–JYOTI

REGD NO. PB-HSP-01
(1.1.2024 TO 31.12.2026)
R.N. No. 1/57

ISSN 0505-7523

मासिक पत्रिका (JOURNAL)

विश्वज्योति

(PEER REVIEWED JOURNAL)
(अभिनिर्देशित मासिक पत्रिका)

महाभारत के आख्यान

73वां वर्ष, अंक 3-4, जून-जुलाई 2024

संचालक–सम्पादक
प्रो. इन्द्रदत्त उनियाल

सह–सम्पादक
प्रो.(डॉ.) प्रेम लाल शर्मा

प्रकाशन स्थान
विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध संस्थान
साधु आश्रम, होश्यारपुर–146021 (पंजाब, भारत)

ISSN 0505-7523

प्रकाशक

विश्वेश्वरानन्द–वैदिक–शोध–संस्थान

साधु आश्रम, होश्यारपुर–146021 (पंजाब, भारत)

(अभिनिर्देशित पत्रिका)

(PEER REVIEWED JOURNAL)

प्रकाशन–परामर्शदात्री समिति :

डॉ. दर्शन सिंह निर्वैर, आजीवन सदस्य, वि.वै.शोध संस्थान कार्यकारिणी समिति, साधु आश्रम, होश्यारपुर।

डॉ. (श्रीमती) कमल आनन्द, आदरी प्रोफैसर, (वि. वै. शोध संस्थान, होश्यारपुर), 1581, पुष्पक कम्पलैक्स, सैक्टर 49–बी, चण्डीगढ़।

प्रो. जगदीश प्रसाद सेमवाल, आदरी प्रोफैसर, (वि. वै. शोध संस्थान, होश्यारपुर), एफ–13, पंचशील इन्कलेव, जीरकपुर (मोहाली) पंजाब।

प्रो. (सुश्री) रेणू कपिला, कोठी नं. बी–7/309, डी. सी. लिंक रोड, होश्यारपुर (पंजाब)।

प्रो. रघवीर सिंह, आदरी प्रोफैसर, वी.वी.आर.आई., साधु आश्रम, होश्यारपुर (पंजाब)।

डॉ. जयप्रकाश शर्मा, 1486, पुष्पक कम्पलैक्स, सैक्टर 49–बी, चण्डीगढ़।

प्रि. उमेश चन्द्र शर्मा, पी.ई.एस (1), रिटा., शिवशक्ति नगर, होश्यारपुर।

डॉ. नरसिंह चरणपंडा, अध्यक्ष, संस्कृत विभाग, डायरैक्टर, IQAC, सैंटरल विश्वविद्यालय ओड़िशा, कोरापुट, ओड़िशा।

प्रो. (डॉ.) ऋतुबाला, वी.वी.बी.आई. एस. एण्ड, आई.एस. (पं.वि.पटल), साधु आश्रम, होश्यारपुर।

प्रो. ललित प्रसाद गौड़, संस्कृत विभाग, कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र (हरियाणा)।

डॉ. रविन्द्र कुमार बरमोला, वी.वी.बी.आई. एस. एण्ड, आई.एस. (पं.वि.पटल), साधु आश्रम, होश्यारपुर।

दूरभाष : कार्यालय : 01882 – 223582, 223606

संचालक (निवास) : 01882–244750

E-mail : vvrinstitute@gmail.com ,

vvr_institute@yahoo.co.in

Website : www.vvrinstitute.com

मुद्रक : विश्वेश्वरानन्द वैदिक–शोध–संस्थान प्रैस, होश्यारपुर (पंजाब)

प्रकाशन विषयक विशिष्ट नियम

१ विश्वज्योति अभिनिर्देशित पत्रिका **(Peer Reviewed Journal)** विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित की जाती है।

२ पत्रिका **(JOURNAL)** प्रत्येक मास की २८ तारीख को (अनिवार्य रूप से) प्रकाशित होती है।

३ इसका प्रकाशन वर्ष अप्रैल मास से प्रारम्भ होता है।

४ इसके अप्रैल-मई एवं जून-जुलाई के दो वार्षिक विशेषांक प्रकाशित होते हैं।

५ भविष्य में जो भी प्राध्यापक अथवा शोध-छात्र पदोन्नति या यत्र-तत्र नियुक्तिहेतु विश्वज्योति में लेख को छपवाना चाहते हैं, वे कम से कम ५ पृष्ठ का अथवा अधिक से अधिक ७ पृष्ठ तक का सटिप्पण अपना लेख भेजें, टिप्पण नीचे या लेख के अन्त में दे सकते हैं। ऐसे लेखों पर ही (Peer Reviewed Journal) का ISSN नम्बर छापा जायेगा।

विशेष: स्वतन्त्र रूप से लेख भेजने वाले विद्वान् लेखकों के लिए यह बन्धन नहीं है। वे स्वतन्त्रता से अपनी रचना, कविता एवं नाटक भेज सकते हैं।

६ संस्थान के पैटर्न सदस्य, आजीवन-सदस्य तथा वार्षिक-सदस्यों को विश्वज्योति नि:शुल्क नियमत: भेजी जाती है।

७ अन्य संस्थाओं द्वारा प्रकाशित पत्रिकाओं के साथ इसका विनियम भी किया जाता है।

८ विश्वज्योति सम्बन्धी पत्रव्यवहार संचालक अथवा सम्पादक के पते पर किया जा सकता है।

९ किसी संस्था, पुस्तकालय एवं विद्वान् के आग्रह पर हिन्दी के प्रचार एवं प्रसार को ध्यान में रखते हुए उनको विश्वज्योति नि:शुल्क भी भेजी जा सकती है।

१० विश्वज्योति में समालोचनार्थ समालोच्य पुस्तक या ग्रन्थ की दो प्रतियाँ भेजनी अनिवार्य हैं। जिस अंक में समालोचना प्रकाशित की जाती है, वह अंक लेखक को नि:शुल्क भेजा जाता है।

११ विश्वज्योति का मूल्य निम्न प्रकार से है- भारत में एक प्रति का मूल्य १० रु: विदेश में ३ डालर। भारत में वार्षिक सदस्यता १०० रु: तथा विदेश में वार्षिक सदस्यता- ३० डालर। भारत में आजीवन सदस्यता १२०० रु: तथा विदेश में ३०० डालर है। विशेषाङ्क २ भाग भारत में ५० रु: तथा विदेश में १२ डालर हैं।

विशेष:- (क) लेखक को पारिश्रमिक देने का नियम नहीं है।

(ख) प्रकाशित लेख की एक प्रति लेखक को भेजी जाती है।

सम्पादक

भारत में एक प्रति का मूल्य : २५ रुपये.
विदेश में एक प्रति का मूल्य : ३ डालर.

विषय-सूची

लेखक	विषय		पृष्ठांक
डॉ. राजीव आर्य	महाभारत के आख्यान : एक विवेचन	लेख	७
डॉ. दीपेन्द्र किशोर आर्य	महाभारत में अष्टावक्र आख्यान	लेख	१४
डॉ. कन्हैयालाल पाराशर	विदुलोपाख्यान	लेख	२०
डॉ. मुकेश कुमार	सुन्द-उपसुन्दोपाख्यान	लेख	२७
डॉ. आदित्य आंगिरस	'महाभारत' की भूमिका का आधार	लेख	३२
डॉ. भूपेन्द्र सिंह	महाभारत का नलोपाख्यान	लेख	३८
डॉ. उमा रानी	आत्मकल्याण के इच्छुक पिता-पुत्र के मध्य संवाद	लेख	४३
डॉ. ताराचन्द आहूजा	यक्ष और युधिष्ठिर के मध्य संवाद	लेख	४६
डॉ. प्रदीप कुमार	शान्तिपर्व में वर्णित रामाख्यान में रामराज्य	लेख	५१
डॉ. शैलजा अरोड़ा	समुद्रमंथन का आध्यात्मिक रहस्य	लेख	५४
श्री मदन मोहन साह	बन्दी और अष्टावक्र का शास्त्रार्थ	लेख	५८
डॉ. सत्यव्रत वर्मा	गरुड़ का मुक्ति कलश	लेख	६६
डॉ. राधा देवी	महाभारत का गहनवनोपाख्यान : एक चिन्तन	लेख	६९
	संस्थान-समाचार		७३
	पुण्य-पृष्ठ		७४-९८

विश्वज्योति

इदं श्रेष्ठं ज्योतिषां ज्योतिरागात् ॥ (ऋ. १,११३,१)

वर्ष ७३ } होश्यारपुर, ज्येष्ठ-आषाढ़ २०८१; जून-जुलाई २०२४ { संख्या ३-४

दैवीः षडुर्वीरुरु नः कृणोत,
विश्वे देवास इह मादयध्वम्।
मा नो विददभिभा मो अशस्तिर्,
मा नो विदद्वृजिना द्वेष्या या।। (अथर्ववेद, ५.३.६)

हे छः विस्तार-मयी दिव्य दिशाओ ! हमारा भी विस्तार करो। हे सब देवताओ ! यहां (हमारे मध्य में) आनन्द का विस्तार करो। (किसी की भी) शत्रुता और बुरी उक्ति हमारा कुछ न बिगाड़ सके। (किसी के भी द्वारा किए गए) द्वेष-मूलक दुष्कर्म हमारा कुछ न बिगाड़ सकें।

(वेदसार - विश्वबन्धुः)

यदृच्छया चोपन्नं स्वर्गद्वारमपावृतम्।
सुखिनः क्षत्रियाः पार्थ लभन्ते युद्धमीदृशम्।।

(गीता, २.३२)

हे पृथा-पुत्र (अर्जुन), और (वे) क्षत्रिय धन्य हैं, (जिन्हें) ऐसे (धर्म-युक्त) युद्ध (का आह्वान, जो उन्हें अपने लिए) स्वर्ग के खुले द्वार (के समान समझना चाहिए) अपने-आप प्राप्त हो जाता है।

PEER REVIEWED JOURNAL
ISSN 0505-7523

विश्वज्योति वर्षः ७३, सं.३-४
जून-जुलाई ,२०२४

महाभारत के आख्यान : एक विवेचन

- राजीव आर्य

मानव सभ्यता के उषा काल में ही आपसी वर्तालाप, विचार-विनियम तथा समय-यापन के उद्देश्य से कथा, दृष्टान्त तथा उदाहरणों के प्रयोग द्वारा आदि मानव ने आख्यान परम्परा का सूत्रपात किया होगा। अतः भारतीय आख्यान परम्परा मानव सभ्यता के उदय जितनी ही प्राचीन मानी जा सकती है। आख्यानों के माध्यम से वक्ता अपने वक्तव्य को प्रभावशाली -ढंग से प्रस्तुत करता है। श्रोता भी उदाहरणों की सहायता से वक्ता की बात को प्रामाणिक तथा विश्वसनीय समझते हैं। अतः सम्प्रेषण सौविध्य के कारण कथोपकथन की यह शैली अत्यन्त लोकप्रिय हुई तथा आज भी यह जनजीवन में अनेक रूपों में व्याप्त है।

आख्यान शब्द का अर्थ

समान्तरकोष के अनुसार आख्यान शब्द का अर्थ हैं- घटनाचक्र, लोककथा, विवरण, वृतान्त, और वर्णन साहित्य। संस्कृत के शब्दकोष वाचस्पत्यम् में आ उपसर्ग पूर्वक ख्यै धातु में ल्युट् प्रत्यय लगाकर आख्यान शब्द की व्युत्पत्ति सिद्ध की गई है। वहाँ इसका अर्थ दिया है 'पूर्ववृत्तोक्तिकथने' अर्थात् पूर्व में घटित किसी घटना का वर्णन, किसी तथ्य का ज्ञान कराना यह वर्णन अथवा ज्ञान किसी व्यक्ति विशेष के समग्र जीवन से सम्बन्धित हो सकता है, अथवा जीवन के किसी विशेष पक्ष, अथवा काल खण्ड से।

यद्यपि आख्यान शब्द से प्रायः कथाओं का ही ग्रहण किया जाता है, परन्तु वास्तव में ये दोनों तत्त्वतः भिन्न हैं। आख्यान वास्तविक सत्य घटना पर आधारित होते हैं, जबकि कथा, पुराकथा, और मिथक का सत्य घटना पर आधारित होना आवश्यक नहीं है। कभी-कभी कोई रीति रिवाज अथवा विचारधारा भी कथा इत्यादि का स्रोत हो सकते हैं। यही आख्यान तथा पुराकथा, कथा, मिथक आदि में प्रमुख भेद है।

आख्यानविधा का उद्गम और विकास : इस सम्बन्ध में बृहदारण्यकोपनिषद् में एक मन्त्र प्राप्त होता है, जिसका अर्थ है- जिस प्रकार चारों ओर से आधान किये हुए गीले ईंधन से उत्पन्न अग्नि से धुआँ निकलता है, उसी प्रकार हे मैत्रेयि! ऋग्वेद, सामवेद, अथर्ववेद, इतिहास, पुराण, उपनिषद्, सूत्र, श्लोक, व्याख्यान, और अनुव्याख्यान उसी महान् सत्ता के ही निष्वास हैं।[1] वैदिक साहित्य के इस प्रमाण के आधार पर आख्यान परम्परा वेदों जितनी ही प्राचीन सिद्ध होती है। वेदों में अनेक

कथाये हैं, जैसे पुरुरवा-उर्वषी, अगस्त्य-लोपामुद्रा, यमयमी, इन्द्र-इन्द्राणी,वृषाकपि आदि के सम्वाद इसी प्रकार के हैं। ब्राह्मण ग्रन्थों में भी शुनःशेप की कथा तथा अन्य कथाएँ प्राप्त होती हैं।

परवर्ती साहित्य में आख्यानों का अधिक विकसित रूप में उल्लेख मिलता है। पाणिनि, काशिका तथा पतंजलि के महाभाष्य में आख्यानों का उल्लेख मिलता है। पाणिनिकालीन सूत्र युग में श्लोक और गाथा का प्रचार भली भाँति हो चुका था और उनके रचयिताओं को श्लोककार और गाथाकार कहा जाता था।[2] आख्यानों के उदाहरणों में पतंजलि और वामन-जयादित्य ने भार्गव-राम एवं ययाति के आख्यानों वाले प्राचीन ग्रन्थों का उल्लेख किया है।[3] आख्यानों के ज्ञाताओं को भिन्न-भिन्न नामों से पुकारा जाता था, जैसे ययाति आख्यान के जानकारों को यायातिक कहा जाता था।

आख्यानों के निरन्तर विकास का मुख्य आधार गाथा एवं आनुवंश्य श्लोक हैं। महाभारत में अनेकशः गाथा शब्द का उल्लेख करते हुए किसी घटना अथवा व्यक्ति का विवरण दिया गया है। बहिरंग एवं अन्तरंग भावचक्र को एक साथ समाविष्ट करने वाले ये आख्यान सच्चे अर्थों में जन मानस के सजीव प्रतिबिम्ब हैं तथा किसी भी देश की सभ्यता एवं संस्कृति के संवाहक होते हैं। इसीलिये आख्यान परम्परा आज भी साहित्य में विभिन्न रूपों में व्याप्त है।

महाभारत के आख्यानों का स्वरूप एवं वैशिष्ट्य

महाभारत में आख्यान परम्परा के विविध रंगों को सहज ही देखा जा सकता है। किसी सिद्धान्त की पुष्टि करने के लिये तथा अपनी बात को अधिक प्रामाणिक तथा प्रभाव-शाली सिद्ध करने के लिये महाभारतकार किसी ऐसे आख्यान को सुनाता है, जो पूर्वकाल में घटित किसी घटना का विवरण होता है। सुने हुए आख्यान के विषय में कौतुहलवश अथवा उसके स्पष्टीकरण हेतु श्रोता कतिपय प्रश्न पूछता है। श्रोता की जिज्ञासा शान्त करने के लिए वक्ता उस आख्यान से सम्बन्धित एक अन्य कथा सुनाता है। इस दूसरी कथा को महाभारत में उपाख्यान कहा गया है। उदाहरण के लिये युद्ध में मारे गये सम्बन्धियों के लिये दुःखी युधिष्ठिर को सान्त्वना देते हुए भीष्म पितामह शान्ति पर्व के 29-31 अध्यायों में राजा सृञ्जय को सुवर्णष्ठीवी पुत्र पाने के वरदान का आख्यान सुनते हैं, युधिष्ठिर के प्रश्नों का उत्तर भी देते हैं। यहाँ अध्याय 29 को राजधर्मविषयक व्यास वाक्य कहा गया है, जबकि अध्याय 30 को नारदपर्वतोपाख्यान तथा अध्याय 31 को सुवर्णष्ठीवी-सम्भवोपाख्यान की संज्ञा दी गई है।

महाभारत में आख्यान, उपाख्यान, पुरातन, गाथा इत्यादि शाब्दों का प्रयोग लगभग समान अर्थों में किया गया है। सभी प्रकार के ज्ञान का विष्वकोश और पंचम वेद बनाने की अभिलाषा से

ये आख्यान समय-समय पर विभिन्न वर्गों के व्यक्तियों के द्वारा जोड़े गये। सभी ने इसमें अपने-अपने सिद्धान्तों का समावेष करते हुए अनेक आख्यानों और उपाख्यानों को जोड़ दिया। इससे महाभारत की मूल कथा का आकार इतना बढ़ गया कि उसकी पहचान करना अत्यन्त दुष्कर कार्य हो गया है। चैबीस हजार श्लोकों वाली भारतसंहिता[4] में 76000 श्लोक आख्यानों, उपाख्यानों और कथाओं के रूप में इस तरह घुल मिल गये हैं, कि प्रक्षिप्त भाग भी मूल कथा जैसा प्रतीत होता है। बाद में जोड़े गये आख्यान महाभारत के कथा प्रसंगों में सर्वथा प्रासंगिक हैं। इन आख्यानों का एक और वैशिष्टय यह है कि ये वक्ता के मन्तव्य को अधिक स्पष्ट तथा प्रामाणिक रूप में प्रस्तुत करते हैं। महाभारत के ये आख्यान विविध प्रकार के हैं। कुछ अत्यन्त रोचक, सरल, सुगम, तथा हृदयस्पर्शी हैं। उनका कथानक जीवन की गुणवत्ता को सुधारने की शिक्षा देते हुए जीवन के महत्त्वपूर्ण पक्षों पर प्रकाश डालता है। ऐसे सरस आख्यान अधिक प्रचलित हुए, तथा अनेक ग्रन्थों के उपजीव्य एवं प्रेरणास्त्रोत बने, जैसे नलोपाख्यान में द्यूतक्रीड़ा के फलस्वरूप नलदमयन्ती की दुर्दशा का वर्णन बहुत मार्मिक है, अतः यह आख्यान अत्यन्त लोकप्रिय है। रामोपाख्यान में श्री रामचन्द्र का लोकोत्तर और आदर्श चरित्र सहृदय पाठक को भावाभिभूत कर देता है। जीवन के इन सार्वभौम पक्षों को उजागर करने वाले ये आख्यान अनेक ग्रन्थों के उपजीव्य बने।

महाभारत को धर्मशास्त्र, अर्थशास्त्र तथा मोक्षशास्त्र का स्वरूप प्रदान कराने वाले आख्यान कुछ भिन्न प्रकार के हैं। ये आख्यान विषय को स्पष्टीकरण करते हैं, भावाभिव्यक्ति भी उच्च कोटि की है, परन्तु वे काव्यत्वविहीन एवं किसी प्राचीन घटना का विवरण मात्र हैं। रसात्मकता के अभाव के कारण उनमें किसी सहृदय पाठक के हृदय को द्रवित करने की क्षमता नहीं है। परन्तु ऐसे आख्यान भी उपदेश को अधिक प्रामाणिक और प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत करते हैं, तथापि वे जनमानस में न तो अधिक लोकप्रिय हो पाये और न ही साहित्य में उपजीव्य बन सके। उन्हें केवल उपदेश के रूप में ही मान्यता मिली। दोनों प्रकार के आख्यान श्रुति परम्परा से पीढ़ी दर पीढ़ी चलते हुए भारतीय संस्कृति के संवाहक बन गये हैं। ये हमें आर्यावर्त की तत्कालीन सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक, सांस्कृतिक तथा साहित्यिक परिस्थितियों का दिग्दर्शन कराते हैं। आनुशांगिक रूप से ही इनमें सृष्टि के रहस्य, मोक्ष का निरूपण तथा वैज्ञानिक सिद्धान्तों की भी झलक मिलती है। इस शोधपत्र में सुविधा की दृष्टि से महाभारत के आख्यानों को निम्नलिखित वर्गों में बाँटा गया है-

(क) समाज के दर्पण आख्यान

(ख) राजधर्मविषयक आख्यान

(ग) आपद्धर्मविषयक आख्यान

(घ) सांस्कृतिक आख्यान

(ड.) साहित्यिक आख्यान

(च) विज्ञानपरक आख्यान

(छ) दार्शनिक आख्यान

(ज) सान्त्वनाप्रद आख्यान

आख्यानों के कुछ उदाहरणों द्वारा उनका सार्वभौमिक महत्व सिद्ध किया जा सकता है।

(क) समाज के दर्पण आख्यान

साहित्यकार अनजाने ही अपनी रचना में समाज का प्रतिबिम्ब दिखा देता है। महाभारत के आख्यानों से भी अनेक बहुमूल्य सूचनाएँ प्राप्त होती हैं। शान्तिपर्व के 242वें अध्याय में शुकदेव और व्यासमुनि के प्रश्नोत्तर प्रसंग में ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और सन्यास आश्रम के कर्तव्यों के उल्लेख का संकेत करता है कि महाभारत काल में मनुष्य जीवन इन चार आश्रमों में विभक्त था। समाज ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र इन चार वर्णों में विभक्त था। शान्तिपर्व के ही 343 अध्याय से स्पष्ट होता है कि ब्राह्मणों का समाज में सम्मानपूर्ण स्थान था। यद्यपि शूद्रों को अन्य वर्णों की अपेक्षा निम्न स्थान प्राप्त था, फिर भी सदाचारी शूद्रों को सम्मान की दृष्टि से देखा जाता था। ब्राह्मणों और क्षत्रियों के संघर्ष का संकेत हमें परशुराम के आख्यान से मिलता है, जिन्होंने पृथ्वी को इक्कीस बार क्षत्रिय विहीन कर दिया था।

(ख) राजधर्मविषयक आख्यान

राजधर्मानुशासनपर्व के आख्यानों में राजनीति के अत्यन्त महत्वपूर्ण सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया गया है, जिनका पालन किसी भी राजा को एक सफल प्रजारंजक और कर्तव्यनिष्ठ राजा बना कर उसके राष्ट्र को उन्नति के शिखर पर पहुँचा सकता है। शान्तिपर्व के अध्याय 90-91 में उतथ्यमुनि द्वारा मान्धाता को दिये गये उपदेश वाला आख्यान राजा के कर्तव्यों का वर्णन करते हुए राजा को धर्मानुकूल आचरण करने का परामर्श देता है। इन्द्र-प्रह्लाद कथा में कहा गया है कि जब शील नष्ट हो जाता है तो धर्म, सत्य, सदाचार, बल, और लक्ष्मी भी नहीं रहते।[5] महाभारत में राजा को देवता का रूप माना गया है, परन्तु उसके लिये भी आचारसंहिता का निर्देश है। राजा सत्यवान तथा उसके पिता द्युमत्सेन के संवाद से ज्ञात होता है कि यदि राजा कर्तव्यनिष्ठ नहीं हो तो प्रजा उसका विरोध और हत्या तक कर सकती है, जैसे अधर्मी राजा वेन को ऋषियों ने अभिमन्त्रित कुशाओं से प्रहार करके मार दिया था।[6]

(ग) आपद्धर्मविषयक आख्यान

आपद्धर्म के आख्यान व्यावहारिक जीवन में उपयोगी कर्तव्यों का बोध कराते हैं। विश्वामित्र चाण्डालकथा से ज्ञात होता है, कि प्राणसंकट आने पर ब्राह्मण को भी भक्ष्याभक्ष्य का विचार त्याग कर अपने प्राणों की रक्षा करनी चाहिये।[7] राजा पर प्रजा की रक्षा का भी भार होता है। अत: उसे तो प्रत्येक स्थिति में अपने प्राणों की रक्षा करनी

चाहिये। यदि आवश्यक प्रतीत हो तो शत्रु से सन्धि करके भी आत्मरक्षा उसी प्रकार करनी चाहिये जिस प्रकार लोमश नामक एक चतुर चूहे ने शिकारी के जाल में फँसने पर भी विवेकपूर्वक बिलाव से मित्रता करके अपने स्वाभाविक शत्रुओं (बिलाव, नेवले और उल्लू) से रक्षा की और बिलाव को भी जाल से बचाया।[8]

(घ) सांस्कृतिक आख्यान

महाभारत के आख्यान जनसामान्य के लिये भी व्यावहारिक जीवन में उपयोगी तथा महत्त्वपूर्ण शिक्षाओं से ओत-प्रोत हैं। जीवन में सफलता पाने के लिये प्रत्येक कार्य को समय पर तथा सुचारू रूप से करना चाहिये- इस सत्य को अनागतविधाता, प्रत्युत्पन्नमति तथा दीर्घसूत्री मत्स्यों की कथा द्वारा भली-भाँति स्पष्ट किया गया है। महर्षि गौतम और चिरकारी के उपाख्यान से शिक्षा मिलती है, कि प्रत्येक कार्य को भली-भाँति सोच विचार करने के पश्चात् की करना चाहिये, क्योंकि क्षणिक आवेश में किये गये कार्य बाद में पश्चात्ताप उत्पन्न करते हैं। प्राणी की प्रकृति कभी नहीं बदलती, जैसा कि एक महर्षि और कुत्ते की कथा से ज्ञात होता है। एक महर्षि ने दयावश एक कुत्ते को क्रमशः चीते, बाघ, हाथी, केसरी सिंह और शरभ का रूप दे दिया, परन्तु बलशाली शरभ बनने के बाद वह कुत्ता उस महर्षि को ही मारने का विचार करने लगा। फिर तपोबल से महर्षि ने उस शरभरूपधारी कुत्ते का विचार जान कर उसे पुनः कुत्ता ही बना दिया।

(ङ.) साहित्यिक आख्यान

महाभारत के कुछ आख्यानों में वैदिक कथाओं के संकेत मिलते हैं। उदाहरणार्थ शान्तिपर्व के 281वें अध्याय में इन्द्र-वृत्र युद्ध कथा कुछ परिवर्तित तथा पौराणिक रूप में मिलती है। किसी-किसी आख्यान में तो वैदिक मन्त्रों के अंश भी उद्धृत किये गये हैं, जैसे स्यूमरश्मिकपिल-संवाद में स्यूरश्मि यज्ञ को प्रधान कर्तव्य बताते हुए कहते हैं- **स्वर्गकामो यजेतेति सततं श्रूयते श्रुतिः।**[9]

(च) विज्ञानपरक आख्यान

भारत के समृद्ध साहित्यिक परम्परा के अतिरिक्त कुछ आख्यानों में अनायास ही प्रसंग वश आये वैज्ञानिक उल्लेख तत्कालीन वैज्ञानिक प्रगति का भी संकेत देते हैं। वसिष्ठ-कराल-जनक-संवाद का उल्लेख करते हुए भीष्म पितामह जीव विज्ञान के महत्त्वपूर्ण तथ्यों पर प्रकाश डालते हुए कहते हैं माता के रज तथा पिता के वीर्य से बालक का शरीर निर्मित होता है। अतः पिता से उसे अस्थि, स्नायु, तथा मज्जा का गुण मिलता है, और माता से त्वचा, माँस, और रक्त का।[10] भरद्वाज-भृगु संवाद में शरीर के आन्तरिक अंगों, पक्वाशय, आमाशय, पंचप्राण तथा जठरानल का वर्णन मिलता है।[11] भीष्म पितामह सनत्कुमार द्वारा ऋषियों को दिये गये और नारदजी द्वारा शुकदेवजी को सुनाये गये आख्यान को उद्धृत

करते हैं, कि यह शरीर पंचभूतों का घर है। हड्डियाँ इसके खम्भे हैं, रक्त माँस से लिप्त है, और नस नाड़ियाँ से इसे बाँधा और चमड़े से मढ़ा गया है।[12] इस संवाद में पंचमहाभूतों के गुण, कार्यों के साथ-साथ सत्त्व, रजस्, और तमस् गुणों के प्रभाव का वर्णन पाया जाता है।[13] व्यास-शुक संवाद तथा असितदेवल-नारद संवाद में विषयानुभूति प्रक्रिया का वर्णन विकसित वैज्ञानिक प्रगति का सूचक है।[14]

(छ) दार्शनिक आख्यान

महाभारत की अनेक अन्तर्कथाएँ मोक्ष सम्बन्धी चर्चा भी करती हैं। शान्ति पर्व में मोक्ष का निरूपण, उसके उपाय, भक्ति, ज्ञान, तथा कर्मयोग की विस्तृत व्याख्या दी गई है। हिंसा रहित यज्ञ का अनुष्ठान, ब्रह्म का निरूपण, सांख्य, तथा योग का वर्णन, समाधि, समाधिस्थ योगी, तथा उसकी व्युत्थित दशा का वर्णन अत्यन्त हृदयग्राही है। शुकदेव-व्यास संवाद में ध्यान विधि, और समाधि की विभिन्न अवस्थाओं का वर्णन योगसाधकों के लिये बहुमूल्य सूचनाओं को समेटे हुए है।[15]

(ज) सान्त्वनाप्रद आख्यान

भवसागर के त्रिविध तापों का वर्णन और उनसे छूटने के उपाय किसी भी मनोरोगी और तनावग्रस्त मनुष्य की मनोचिकित्सा करके सान्त्वना प्रदान करने में सहायक हैं। मृत्यु की अनिवार्यता, काल की प्रबलता, और समय की परिवर्तनशीलता का मनोहारी उपदेश दु:खसंतप्त व्यक्ति में मन में शीतलता का संचार करता है। शुक-व्यास संवाद में कहा है, कर्मफल अवश्य भोगना पड़ता है। अच्छे कार्य का फल सुख तथा पाप का फल दु:ख के रूप में मिलता है। अत: कभी भी सुख में प्रसन्न और दु:ख में दु:खी मत होवो।[16] ब्राह्मण-कुण्डधार की कथा का संदेश है कि धन और कामभोगों की अपेक्षा धर्म और तपस्या श्रेष्ठ है।[17] ऋषि समंग-नारद संवाद सिखाता है कि नित्य तथा अनित्य तत्त्व के प्रति अज्ञान, अभिमान, मोह, तृष्णा और काम का त्याग ही शोकनिवृत्ति का मुख्य उपाय है।[18]

महाभारत के आख्यानों का अन्य भाषाओं पर प्रभाव

अनेक भारतीय भाषाओं में महाभारत की कथाओं पर आधारित अनेक काव्यों, उपन्यासों और नाटकों की रचना हुई है। केवल हिन्दी में ही लगभग 45 ग्रन्थ महाभारत के आख्यानों पर आधारित हैं। इसके पात्रों का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण करने वाली एक ग्रन्थमाला हिन्दी में, और एक अंग्रेजी में मिलती है। परन्तु इन सभी रचनाओं में महाभारत के पात्रों के चरित्रों का मूल्यांकन आधुनिक परिवेश में किया गया है।

मध्य एशिया, यूरोप, अमेरिका, थाईलैंड, बर्मा, सियाम, जावा, बाली, इन्डोनेशिया द्वीप-समूह में महाभारत का प्रचार, प्रसार हुआ है और वहाँ भी महाभारत का उपजीव्य बना कर उसके

आख्यानों पर आधारित अनेक ग्रन्थ लिखे गये हैं। भारतवर्ष में ही महाभारत पर टेलीविज़न पर सीरियल्स प्रसारित हुए हैं, जिन्हें जनता ने अति उत्सुकता और कौतुहल से देखा। फ्रेंच भाषा में भी पीटब्रुक्स नामक व्यक्ति ने महाभारत पर आधारित प्रस्तुति तैयार की, जिसे फ्रेंच टेलीविज़न पर प्रकाशित किया गया और वह अत्यन्त लोकप्रिय हुआ।

इस प्रकार भारतीय आख्यान परम्परा महाभारत में सम्यक् रूप से पल्लवित और सुपोषित रूप में व्याप्त है। इन आख्यानों पर स्वतन्त्र रूप से शोध कार्य करने की आवश्यकता है। तभी महाभारत का उचित और न्यायपूर्ण मूल्यांकन सम्भव हो सकता है।

---

१. स यथार्द्रेन्धनाग्नेरभ्याहितात्पृथग्धूमा विनिश्चरन्त्येवं वा अरेऽस्य महतो भूतस्य निश्वसितमेतद्यदृग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्वांगिरस, इतिहासः पुराणम्, विद्या, उपनिषदः, श्लोकाः, सूत्राण्यनुव्याख्यानानि व्याख्यानान्यस्यैवैतानि सर्वाणि निश्वसितानि। बृहदा. उप. २.४.१०।

२. न शब्दश्लोककलहगाथावैरचाटुसूत्रामन्त्रपदेषु। काशिका, ३.२.२३
शब्दादिषूपपदेषु करोतेष्टप्रत्ययो न भवति। हेत्वादिषु प्राप्तः प्रतिषिध्यते। शब्दकारः, श्लोककारः, कलहकारः, गाथाकारः, वैरकारः, चाटुकारः, सूत्रकारः, मन्त्रकारः, पदकारः।

३. दिक्शब्दा ग्रामजनपदाख्यानचानराटेषु। तदेव ६.२.१०३

४. चतुर्विंशतिसाहस्रीं चक्रे भारतसंहिताम्। उपाख्यानैर्विना तावद्, भारतं प्रोच्यते बुधैः। आदिपर्व

५. इन्द्र-प्रलाद-कथा-शान्पिर्व, अध्याय, १२४

६. तं प्रज्ञासु विधर्माणं रागद्वेषवशानुगम्।
मन्त्रपूतैः कुशैर्जघ्नुः ऋषिकभिः ब्रह्मवादिभिः।। तदेव, अध्याय, ५९३.९४

७. तदेव, अध्याय, १४१

८. तदेव, अध्याय, १३८

९. तदेव, अध्याय, १६८.१८

१०. तदेव, अध्याय, ३०५.४-६

११. तदेव, अध्याय, १८५.१४

१२. तदेव, अध्याय, ३२९.४०

१३. तदेव, अध्याय, २८५

१४. तदेव, अध्याय, २७५

१५. तदेव,अध्याय, २३६,२४०

१६. तदेव, अध्याय, २३२, ३३१

१७. तदेव, अध्याय, २७१

१८. तदेव, अध्याय, ३३०

– असिस्टैंट प्रोफेसर, सरकारी पी. जी. कालेज, हिसार।

PEER REVIEWED JOURNAL
ISSN 0505-7523

विश्वज्योति वर्षः ७३, सं.३-४
जून-जुलाई ,२०२४

महाभारत में अष्टावक्र आख्यान

- दीपेन्द्र किशोर आर्य

महाभारत संस्कृत साहित्य का उपजीव्य ग्रंथ रहा है। इसकी महत्ता को देखकर ही इसे पंचम वेद के रूप में स्वीकार किया गया है। अनेक आख्यान तथा उपाख्यानों के संग्रह के कारण महाभारत एक विशाल महाकाव्य बन सका। इसमें उपलब्ध सभी आख्यान जीवनमूल्यों से ओत-प्रोत हैं। उन्हीं आख्यानों में से एक प्रसिद्ध आख्यान है - अष्टावक्र का आख्यान। यह आख्यान महाभारत के तृतीय पर्व वनपर्व में 132 अध्याय से 134 अध्याय तक वर्णित है। महर्षि लोमश धर्मराज युधिष्ठिर को विभिन्न तीर्थ स्थानों की महिमा बताने के क्रम में अष्टावक्र की कथा सुनाते हैं, जो कि इस प्रकार है-

उद्दालक ऋषि के पुत्र का नाम श्वेतकेतु था, जो इस भूतल पर मन्त्र- शास्त्र में अत्यन्त निपुण कहे जाते थे। उद्दालक ऋषि के ही एक शिष्य का नाम कहोड़ था। कहोड़ एक विनीत शिष्य की भाँति उद्दालक मुनि की परिचर्या में संलग्न रहते थे। गुरु ने शिष्य की उस सेवा के महत्त्व को समझकर शीघ्र ही उन्हें सम्पूर्ण वेद-शास्त्रों का ज्ञान करा दिया और अपनी पुत्री सुजाता को भी उन्हें पत्नीरूप से समर्पित कर दिया। कुछ दिनों के बाद सुजाता गर्भवती हो गई। एक दिन कहोड़ वेदपाठ कर रहे थे तो गर्भ के भीतर से बालक ने कहा- **रात्रिमध्ययनं करोषि नेदं पितः सम्यगि-वोपवर्तते ।**[1] पिताजी! आप रातभर वेदपाठ करते हैं, तो भी आपका वेद पाठ गलत हो रहा है। शिष्यों के बीच में बैठे हुए महर्षि कहोड़ इस प्रकार का उलाहना सुनकर अपमान का अनुभव करते हुए कुपित हो उठे और उस गर्भस्थ बालक को शाप देते हुए बोले, अरे! तू अभी पेट में रहकर ऐसी टेढ़ी बातें बोलता है, अतः तू आठ अंगों से टेढ़ा हो जायगा - **यस्मात् कुक्षौ वर्तमानो ब्रवीषि तस्माद् वक्रो भवितास्यष्टकृत्वः।**[2] उस शाप के अनुसार वह संतान आठ अंगों से टेढी होकर पैदा हुई ,इसलिए अष्टावक्र नाम से उनकी प्रसिद्धि हुई ।

पत्नी द्वारा घर के निमित्त धन मांगने पर कहोड़ राजा जनक के दरबार में जा पहुँचे। वहाँ आचार्य बंदी से शास्त्रार्थ में उनकी हार हो गई। हार जाने के फलस्वरूप उन्हें जल में डुबा दिया गया। इस घटना के बाद अष्टावक्र का जन्म हुआ।उसी समय उद्दालक को भी श्वेतकेतु के रूप में पुत्र की प्राप्ति हुई। पिता के न होने के कारण वह अष्टावक्र अपने नाना उद्दालक को अपना पिता और समान आयु के कारण मामा श्वेतकेतु को अपना भाई

समझता था। एक दिन जब वह उद्दालक की गोद में बैठा था तो श्वेतकेतु ने उसे अपने पिता की गोद से खींचते हुए कहा कि हट जा तू यहाँ से, यह तेरे पिता की गोद नहीं है- **नायं तवाङ्कः पितुरित्युक्तवांश्च।**[3] अष्टावक्र को यह बात अच्छी नहीं लगी और उन्होंने तत्काल अपनी माता के पास आकर अपने पिता के विषय में पूछताछ की। माता ने अष्टावक्र को सारी बातें सच-सच बता दीं।

अपनी माता की बातें सुनने के पश्चात् अष्टावक्र अपने मामा श्वेतकेतु के साथ बंदी से शास्त्रार्थ करने के लिये राजा जनक की यज्ञशाला में पहुँचे। वहाँ द्वारपालों ने उन्हें रोकते हुए कहा कि यज्ञशाला में बच्चों को जाने की आज्ञा नहीं है, केवल विद्वान वृद्ध हीं वहाँ जा सकते हैं। इस पर अष्टावक्र बोले-

न तेन स्थविरो भवति येनास्य पलितं शिरः ।
बालोऽपि यः प्रजानाति तं देवाः स्थविरं विदुः ॥
न हायनैर्न पलितैर्न वित्तेन न बन्धुभिः ।
ऋषयश्चक्रिरे धर्मं योऽनूचानः स नो महान् ॥[4]

अरे द्वारपाल! केवल अधिक वर्षों की अवस्था होने से, बाल पकने से, धन बढ़ जाने से और अधिक भाई-बन्धु हो जाने से भी कोई बड़ा हो नहीं सकता; ऋषियों ने ऐसा नियम बनाया है कि हम ब्राह्मणों में जो अंगों सहित सम्पूर्ण वेदों का स्वाध्याय करनेवाला तथा वक्ता है, वही बड़ा है।

इतना कहकर वे राजा जनक की सभा में जा पहुँचे और बोले- राजन्! आप जनकवंश के श्रेष्ठ पुरुष हैं, सम्राट् हैं। आपके यहाँ सभी प्रकार के ऐश्वर्य परिपूर्ण हैं। वर्तमान समय में केवल आप ही उत्तम यज्ञकर्मों का अनुष्ठान करनेवाले हैं। हमने सुना है कि आपके यहाँ बन्दी नाम से प्रसिद्ध कोई विद्वान् हैं, जो वाद-विवाद के मर्म को जाननेवाले कितने ही वृद्ध ब्राह्मणों को शास्त्रार्थ में हराकर वश में कर चुके हैं और फिर आपके ही दिये हुए विश्वसनीय पुरुषों द्वारा उन सबको निःशंक होकर पानी में डुबवा दिया है। मैं ब्राह्मणों के समीप यह समाचार सुनकर अद्वैत ब्रह्म के विषय में वर्णन करने के लिये यहाँ आया हूँ। वे बन्दी कहाँ हैं? मैं उन्हें शास्त्रार्थ के लिए चुनौती देता हूँ।

राजा जनक ने अष्टावक्र को अल्पायु वाला बालक समझ कर समझाया। राजा बोले- ब्राह्मणकुमार! तुम अपने विपक्षी की प्रवचन -शक्ति को जाने बिना ही जीतने की इच्छा रखते हो। जो प्रतिवादी के बल को न जानते हों, वे ही ऐसी बातें कह सकते हैं। वेदों का अनुशीलन करनेवाले बहुत-से ब्राह्मण बन्दी का प्रभाव देख चुके हैं। तुम्हें इस बन्दी की शक्ति का कुछ भी ज्ञान नहीं है। इसीलिये उसे जीतने की इच्छा कर रहे हो। आज से पहले कितने ही विद्वान् ब्राह्मण बन्दी से मिले हैं और जैसे सूर्य के सामने तारों का प्रकाश फीका पड़ जाता है, उसी प्रकार वे बन्दी के सामने हतप्रभ हो गये हैं। तात! कितने ही ज्ञानोन्मत्त ब्राह्मण बन्दी को जीतने की अभिलाषा रखकर शास्त्रार्थ की घोषणा करते हुए आये हैं; किंतु उनके निकट पहुँचते ही उनका प्रभाव नष्ट हो गया है। इसलिए

आप उनसे शास्त्रार्थ का विचार त्याग दो।

राजा की बात सुनकर अष्टावक्र बोले- महाराज ! अभी बन्दी को हम जैसों के साथ शास्त्रार्थ करने का अवसर नहीं मिला है, इसीलिये वह सिंह बना हुआ है और निडर होकर बातें करता है। आज मुझसे जब उसकी भेंट होगी, उस समय वह पराजित होकर मुर्दे की भाँति सो जायगा। ठीक उसी तरह, जैसे रास्तेमें टूटा हुआ छकड़ा जहाँ-का-तहाँ पड़ा रह जाता है,उसका पहिया एक पग भी आगे नहीं बढ़ता।

राजा जनक ने अष्टावक्र की दृढ़ता देखकर उसकी योग्यता की परीक्षा लेने के लिये पूछा-

त्रिंशकद्वादशांशस्य चतुर्विंशतिपर्वणः ।
यस्त्रिषष्टिशतारस्य वेदार्थं स परः कविः ॥[५]

वह पुरुष कौन है जो तीस अवयव, बारह अंश, चौबीस पर्व और तीन सौ साठ अक्षरों वाली वस्तु का ज्ञानी है? राजा जनक के प्रश्न को सुनते ही अष्टावक्र बोले-

चतुर्विंशतिपर्व त्वां षण्नाभि द्वादशप्रधि ।
तत् त्रिषष्टिशतारं वै चक्रं पातु सदागति ॥[६]

राजन्! चौबीस पक्षों वाला, छः ऋतुओं वाला, बारह महीनों वाला तथा तीन सौ साठ दिनों वाला संवत्सर आपकी रक्षा करे। अष्टावक्र का सही उत्तर सुनकर राजा जनक ने फिर प्रश्न किया -

किंस्वित् सुप्तं न निमिषति
किंस्विज्जातं नचोपति ।
कस्य स्विद्धृदयं नास्ति
किं स्विद् वेगेन वर्धते ॥[७]

वह कौन है जो सुप्तावस्था में भी अपनी आँख बन्द नहीं रखता? जन्म लेने के उपरान्त भी चलने में कौन असमर्थ रहता है? कौन हृदय विहीन है? और शीघ्रता से बढ़ने वाला कौन है? अष्टावक्र ने उत्तर दिया-

मत्स्यः सुप्तो न निमिषत्यण्डं जातं न चोपति ।
अश्मनो हृदयं नास्ति नदी वेगेन वर्धते ॥[८]

हे जनक! सुप्तावस्था में मछली अपनी आँखें बन्द नहीं रखती। जन्म लेने के उपरान्त भी अंडा चल नहीं सकता। पत्थर हृदयहीन होता है और वेग से बढ़ने वाली नदी होती है।अष्टावक्र के उत्तरों को सुकर राजा जनक प्रसन्न हो गये और उन्हें बंदी के साथ शास्त्रार्थ की अनुमति प्रदान कर दी।

शास्त्रर्थ की अनुमति मिलने के बाद अष्टावक्र ने बंदी को ललकारते हुये कहा -अपने को अतिवादी मानने वाले बन्दी ! तुमने पराजित हुए पण्डितों को पानी में डुबवा देनेका नियम कर रखा है, किंतु आज मेरे सामने तुम्हारी बोलती बंद हो जायेगी । जैसे प्रलयकाल के प्रज्वलित अग्नि के समीप नदियों का प्रवाह सूख जाता है, उसी प्रकार मेरे सामने आने पर तुम भी सूख जाओगे। तुम्हारी वादशक्ति नष्ट हो जायेगी। ललकार सुन बंदी ने अष्टावक्र से कहा -मुझे सोता हुआ सिंह समझकर न जगाओ (न छेड़ो), अपने जबड़ों को चाटता हुआ विषैला सर्प मानो । तुमने पैरों से ठोकर मारकर मेरे मस्तक को कुचल दिया है। अब जब तक तुम डँस लिये नहीं जाते तबतक तुम्हें छुटकारा नहीं मिल सकता, इस बात को

अच्छी तरह समझ लो। जो देहधारी अत्यन्त दुर्बल होकर भी अहंकारवश अपने हाथ से पर्वत पर चोट करता है, उसी के हाथ और नख विदीर्ण हो जाते हैं। उस चोट से पर्वत में घाव होता नहीं देखा जाता है।अब तुम मेरे प्रश्नों के उत्तर दो –

एक एवाग्निर्बहुधा समिध्यते
एकः सूर्यः सर्वमिदं विभाति ।
एको वीरो देवराजोऽरिहन्ता
यमः पितृणामीश्वरश्चैक एव ।।[९]

एक सूर्य सारे संसार को प्रकाशित करता है, देवराज इन्द्र एक ही वीर हैं तथा यमराज भी एक है।

अष्टावक्र बोले –

द्वाविन्द्राग्नी चरतो वै सखायौ
द्वौ देवर्षी नारदपर्वतौ च ।
द्वावश्विनौ द्वे रथस्यापि चक्रे
भार्यापती द्वौ विहितौ विधात्रा ।।[१०]

इन्द्र और अग्निदेव दो देवता हैं। नारद तथा पर्वत दो देवर्षि हैं, अश्विनी कुमार भी दो ही हैं। रथ के दो पहिये होते हैं और पति–पत्नी दो सहचर होते हैं।

बंदी ने कहा–

संसार तीन प्रकार से जन्म धारण करता है। कर्मों का प्रतिपादन तीन वेद करते हैं। तीनों काल में यज्ञ होता है तथा तीन लोक और तीन ज्योतियाँ हैं।[११]

अष्टावक्र बोले–

चतुष्टयं ब्राह्मणानां निकेतं
चत्वारो वर्णा यज्ञमिमं वहन्ति ।
दिशश्चतस्रो वर्णचतुष्टयं च
चतुष्पदा गौरपि शश्वदुक्ता ।।[१२]

आश्रम चार हैं, वर्ण चार हैं, दिशायें चार हैं और ओंकार, आकार, उकार तथा मकार ये वाणी के प्रकार भी चार हैं।

बंदी ने कहा–

पञ्चाग्नयः पञ्चपदा च पङ्क्ति–
र्यज्ञाः पञ्चैवाप्यथ पञ्चेन्द्रियाणि ।
दृष्टा वेदे पञ्चचूडाप्सराश्च लोके
ख्यातं पञ्चनदं च पुण्यम् ।।[१३]

यज्ञ पाँच प्रकार के होते हैं, यज्ञ की अग्नि पाँच हैं, ज्ञानेन्द्रियाँ पाँच हैं, पंच दिशाओं की अप्सरायें पाँच हैं, पवित्र नदियाँ पाँच हैं तथा पंक्ति छंद में पाँच पद होते हैं।

अष्टावक्र बोले –

षडाधाने दक्षिणामाहुरेके षट्
चैवेमे ऋतवः कालचक्रम् ।
षडिन्द्रियाण्युत षट् कृत्तिकाश्चषट्
साद्यस्काः सर्ववेदेषु दृष्टाः ।।[१४]

दक्षिणा में छः गौएँ देना उत्तम है, ऋतुएँ छः होती हैं, मन सहित इन्द्रयाँ छः हैं, कृतिकाएँ छः होती हैं और साधस्क भी छः ही होते हैं।

बंदी ने कहा –

सप्त ग्राम्याः पशवः सप्त वन्याः
सप्तच्छन्दांसि क्रतुमेकं वहन्ति ।
सप्तर्षयः सप्त चाप्यर्हणानि
सप्ततन्त्री प्रथिता चैव वीणा ।।[१५]

पालतू पशु सात उत्तम होते हैं और वन्य पशु भी सात ही, सात उत्तम छंद हैं, सप्तर्षि सात हैं और

वीणा में तार भी सात ही होते हैं।

अष्टावक्र बोले –

अष्टौ शाणाः शतमानं वहन्ति

तथाष्टपादः शरभः सिंहघाती ।

अष्टौ वसूञ्शुश्रुम देवतासु

यूपश्चाष्टास्त्रिर्विहितः सर्वयज्ञे ॥[१६]

तराजूमें लगी हुई सनकी डोरियाँ भी आठ ही होती हैं, जो सैकड़ोंका मान (तौल) करती हैं। सिंहको भी मार गिरानेवाले शरभके आठ ही पैर होते हैं।आठ वसु हैं तथा यज्ञ के स्तम्भक कोण भी आठ होते हैं।

बंदी ने कहा –

नवैवोक्ताः सामिधेन्यः पितृणां

तथा प्राहुर्नवयोगं विसर्गम् ।

नवाक्षरा बृहती सम्प्रदिष्टा –

नवयोगो गणनामेति शश्वत् ॥[१७]

पितृ यज्ञ में समिधा नौ छोड़ी जाती है, प्रकृति नौ प्रकार की होती है तथा वृहती छंद में अक्षर भी नौ ही होते हैं।

अष्टावक्र बोले –

दिशो दशोक्ताः पुरुषस्य लोके

सहस्रमाहुर्दशपूर्णं शतानि ।

दशैव मासान् बिभ्रति गर्भवत्यो

दशैरका दश दाशा दशार्हाः ॥[१८]

दिशाएँ दस हैं, तत्वज्ञ दस होते हैं, बच्चा दस माह में होता है और दहाई में भी दस ही होता है।

बंदी ने कहा –

एकादशैकादशिनः पशूना–

मेकादशैवात्र भवन्ति यूपाः ।

एकादश प्राणभृतां विकारा

एकादशोक्ता दिवि देवेषु रुद्राः ॥[१९]

ग्यारह रुद्र हैं, यज्ञ में ग्यारह स्तम्भ होते हैं और पशुओं की ग्यारह इन्द्रियाँ होती हैं।

अष्टावक्र बोले –

संवत्सरं द्वादशमासमाहु–

जगत्याः पादो द्वादशैवाक्षराणि ।

द्वादशाहः प्राकृतो यज्ञ

उक्तोद्वादशादित्यान् कथयन्तीह धीराः ॥[२०]

बारह आदित्य होते हैं बारह दिन का प्रकृति यज्ञ होता है, जगती छंद में बारह अक्षर होते हैं और वर्ष भी बारह मास का ही होता है।

बंदी ने कहा–

त्रयोदशी तिथिरुक्ता प्रशस्ता

त्रयोदशद्वीपवती मही च ।[२१]

त्रयोदशी उत्तम होती है, पृथ्वी पर तेरह द्वीप हैं।...... इतना कहते कहते बंदी श्लोक की अगली पंक्ति भूल गये और चुप हो गये। इस पर अष्टावक्र ने श्लोक को पूरा करते हुए कहा –

त्रयोदशाहानि ससार केशी

त्रयोदशादीन्यतिच्छन्दांसि चाहुः ॥[२२]

वेदों में तेरह अक्षर वाले छंद अति छंद कहलाते हैं और अग्नि, वायु तथा सूर्य तीनों तेरह दिन वाले यज्ञ में व्याप्त होते हैं।

इस प्रकार शास्त्रार्थ में बंदी की हार हो जाने पर अष्टावक्र ने कहा–

अनेनैव ब्राह्मणाः शुश्रुवांसो वादे

जित्वा सलिले मज्जिताः प्राक् ।
तानेव धर्मानयमद्य बन्दी
प्राप्नोतु गृह्याप्सु निमज्जयैनम् ॥[२३]

राजन् ! यह हार गया है, अतएव इसे भी जल में डुबो दिया जाये। तब बंदी बोला–

अहं पुत्रो वरुणस्योत राज्ञ-
स्तत्रास सत्रं द्वादशवार्षिकं वै ।
सत्रेण ते जनक तुल्यकालं
तदर्थं ते प्रहिता मे द्विजाग्रयाः ॥[२४]

हे महाराज! मैं वरुण का पुत्र हूँ और मैंने सारे हारे हुए ब्राह्मणों को अपने पिता के पास भेज दिया है। मैं अभी उन सबको आपके समक्ष उपस्थित करता हूँ। बंदी के इतना कहते ही बंदी से शास्त्रार्थ में हार जाने के पश्चात जल में डुबोये गये सार ब्राह्मण जनक की सभा में आ गये जिनमें अष्टावक्र के पिता कहोड़ भी थे।पुत्र को सामने देखकर तथा अपनी स्वतंत्रता का कारण उसे जानकर कहोड़ ने प्रसन्न होकर राजा से कहा –

इत्यर्थमिच्छन्ति सुताञ्जना जनक कर्मणा ।
यदहं नाशकं कर्तुं तत् पुत्रः कृतवान् मम ॥[२६]

जनकराज ! लोग इसीलिये अच्छे कर्मों द्वारा पुत्र पाने की इच्छा रखते हैं, क्योंकि जो कार्य मैं नहीं कर सका, उसे मेरे पुत्र ने कर दिखाया।अष्टावक्र ने अपने पिता के चरणस्पर्श किये। तब उस ऋषि कहोड ने अपने पुत्र से कहा–

.... नदीं समङ्गां शीघ्रमिमां विशस्व ।
प्रोवाच चैनं स तथा विवेश
समैरङ्गैश्चापि बभूव सद्यः ॥[२६]

पुत्र! तुम जाकर समंगा नदी में स्नान करो।उसके प्रभाव से तुम मेरे शाप से मुक्त हो जाओगे। तब अष्टावक्र ने इस स्थान में आकर समंगा नदी में स्नान किया और उसके सारे वक्र अंग सीधे हो गये।

लोमश ऋषि ने युधिष्ठिरको सम्बोधित करते हुये कहा –युधिष्ठिर ! इसी से समंगा नदी पुण्यमयी हो गयी । इसमें स्नान करनेवाला मनुष्य सब पापों से मुक्त हो जाता है। तुम भी स्नान, पान (आचमन) और अवगाहन के लिये अपनी पत्नी और भाइयों के साथ इस नदी में प्रवेश करो।

---

१. महाभारत, वनपर्व, अध्याय १३२,१०		२. वहीं, ११	३. वहीं १८
४. वहीं, १३३, ११-१२	५. वहीं, २४	६. वहीं, २५	७. वहीं, २८
८. वहीं, २९	९. महाभारत, वनपर्व, अध्याय १३४, ८		१०. वहीं, ९
११. वहीं, ९	१२. वहीं, ११	१३. वहीं, १२	१४. वहीं, १३
१५. वहीं, १४	१६. वहीं, १५	१७. वहीं, १६	१८. वहीं, १७
१९. वहीं, १८	२०. वहीं, १९	२१. वहीं, २०	२२. वहीं, २०
२३. वहीं, २३	२४. वहीं, २४	२५. वहीं, ३३	२६. वहीं, ३९

– सहायक आचार्य, संस्कृत विभाग, पटना कालेज, पटना विश्वविद्यालय, पटना।

PEER REVIEWED JOURNAL
ISSN 0505-7523

विश्वज्योति वर्ष: ७३, सं.३-४
जून-जुलाई ,२०२४

महाभारत का शौर्य-सम्पन्न प्रसंग-

विदुलोपाख्यान

- कन्हैया लाल पाराशर

महाभारत के अन्तर्गत उद्योगपर्व में अध्याय १३१ से अध्याय १३४ तक विदुलोपाख्यान वर्णित हुआ है। महामहोपाध्याय सिद्धेश्वर शास्त्री चित्राव के अनुसार महाभारत में राजनैतिक दृष्टि से उपदेश करने वाले जो भी कुछ उपदेश प्राप्त हैं उनमें यह (विदुला और उसके पुत्र का) संवाद श्रेष्ठ माना जाता है।[१] विदुला नामक वीरांगना तथा उसके पुत्र संजय के परस्पर संवादरूप इस पुरातन इतिहास का वर्णन पाण्डवों की माता कुन्ती ने भगवान् श्रीकृष्ण के प्रति किया है। माता कुन्ती का यह प्रयास युधिष्ठिर को युद्ध-प्रवृत्त कराने के लिये था।[२] इस संवाद में विदुला ने अपने पुत्र को युद्ध करने के लिए अनेक प्रकार से प्रोत्साहित किया है। विदुला के इसी संवाद का निर्देश युधिष्ठिर ने भी अपनी माँ कुन्ती के पास पुन: एक बार किया था।[३] डां. सिद्धेश्वर चित्राव का कथन है कि- **'जय' नामक महाभारत की रचना भी इसी संवाद को आधार भूत मानकर की गयी है।**[४] डां. चित्राव के उक्त कथन से स्पष्ट हो जाता है कि विदुला-पुत्र संवाद एक अतिविशिष्ट उपाख्यान है। यह उपाख्यान पृथक् रूप से भी चौखम्बा संस्कृत सीरिज वाराणसी से तृतीय आवृत्ति के रूप में गुरुपूर्णिमा २००९ को प्रकाशित हो चुका है तथा कई विश्वविद्यालयों के संस्कृत पाठ्यक्रम में पढाया जाता रहा है।

मूल कथानक- विदुला सौवीर देश की रानी थी। इसका अपर नाम विदुरा भी मिलता है।[५] इसके पुत्र का नाम संजय था। संजय अभी अवयस्क ही था कि पिता का साया सिर से उठ गया। शासन सत्ता का दायित्व संजय के बाल-सुलभ कोमल कन्धों पर आ पड़ा। ऐसी अवस्था में अवसर पाकर सौवीर के निकट सिंधु देश के राजा ने सौवीर देश पर चढाई कर दी। संजय ने प्रबल शत्रुबल को अपनी सीमाओं पर ललकारा। किन्तु अल्पवयस्क तथा अनुभवहीन होने के कारण सिन्धु-सेना से परास्त हुआ। किसी तरह प्राण बचाकर अपने राजमहल में आया और लज्जा से दुबक कर बैठ गया। अपने नायक संजय की पराजय से सौवीर की सेना भी हतोत्साहित होकर अपने भाग्य को कौसने लगी। उधर सिन्धु नरेश सदल-बल गर्जता-तर्जता सौवीर के राजभवनों की ओर कूच कर रहा था। संजय की माता ने जब

यह दु:खद समाचार सुना तो वह अपनी पुत्रवधू को साथ लेकर वहाँ आई जहाँ संजय भय से दुबक कर बैठा था। आते ही वीर माता ने आक्षेप-पूर्वक पुत्र संजय को डांट पिलायी।[६]

विदुला का प्रलाप-रणछोड़ पुत्र की दुर्दशा देखकर आहत हुई वह उसे फटकारती है- ''शत्रुओं का हर्ष बढ़ाने वाले कपूत क्या तू मेरा और अपने महावीर पिता का ही पुत्र है? ऐसा उत्साहहीन मन्युरहित, कायर हमारा पुत्र नहीं हो सकता।[७] अरे कायर, उठो अपने सब शत्रुओं की हंसी का पात्र मत बनो। अपने बन्धुओं के शोक का कारण मत बनो। पराजित हो कर सोये मत रहो।[८] वज्रपात से आहत निर्जीव शव की तरह क्यों पड़े हो। हे कायर! उठो शत्रु से पराजित होकर पड़े मत रहो।[९] तुम्हारा इष्ट (यज्ञादि) तथा पूर्त (परोपकार के कार्य), तुम्हारी कीर्ति सब निष्फल हुई। तेरे भोग के सब साधन, राज्य-ऐश्वर्य भी नष्ट हो चुके फिर तुम किस लिए जीवित हो?[१०] तुम्हारा नाम संजय है। मैंने और तुम्हारे पिता ने ''तुम विजयी बनोगे'' इस कामना से तुम्हारा यह नाम रखा था। बेटा अपने नाम को सार्थक करो।[११] हे पुत्र! तुम जब मुझे और अपनी भार्या को दु:खी दुर्बल देखोगे तब तुम्हारे जीवित रहने से भी भला क्या लाभ?[१२]

बेटा संजय! क्षत्रियों का जन्म तो युद्ध करके विजय प्राप्त करने के लिये ही हुआ है। तू पुन: युद्ध कर। करो या मरो का उपदेश देते हुए विदुला ने पुत्र को फिर ऐसे प्रेरित किया-

आत्मानं वा परित्यज्य शत्रुं विनिपात्य च।
अतोऽन्येन प्रकारेण शान्तिरस्य कुतो भवेत्।[१४]

पुत्र संजय! तू अपने बल ओर पौरुष को जानकर अपने इस कुल को उभार ले। यह तुम्हारा कुल तुम्हारे ही कारण रसातल को जा रहा है। संजय की दशा तो ऐसी हो गई मानों काटो तो खून नहीं। एक तो पराजय की पीड़ा दूसरे अपनी ही माता के द्वारा प्रताड़ना। संजय बड़ा मातृभक्त था। उसने मां की ममता को कुरेदते हुए निवेदन किया- ''माता मैं यदि संसार में न रहा तो इस सम्पूर्ण धरा-धाम पर आपका कौन सहारा होगा? माँ, बताओ तो मेरे मरने पर आपको अपना जीवन क्या निष्प्रयोजन नहीं लगेगा?[१५]

विदुला ने आत्मसम्मान का प्रदर्शन करते हुए पुत्र की उक्त समस्या का समाधान किया- वत्स! मैं एक बड़े श्रेष्ठ कुल में पैदा हुई और विवाहित होकर बड़े कुल में आई हूँ। ठीक ऐसे ही जैसे किसी एक सरोवर का निर्मल नीर दूसरे सरोवर स्वच्छ जल में आकर तद्रूप हो जाता है। मैं अपने पति से आदर पाकर गृहस्वामिनी बनी। किन्तु तेरे इस कायरतापूर्ण आचरण से मैं कहीं की भी न रही हूँ।[१६] मैं अकेली नहीं तुम्हारी धर्मपत्नी भी इस आघात से दुर्बल हो गई है। हमारी इस दुर्गति को देखकर भी बताओ फिर तुम्हारा जीवन किस काम का?[१७] पहले सब हमारी शरण में रहते थे। अब हम दूसरों की शरण में रहेंगे। ऐसी अवस्था में हमारा जीवन दूभर हो जाएगा। मैं तो प्राणत्याग ही

कर दूँगी।[१८] तुम जानते हो अब हमारी क्या दुर्गति होगी। नीतिकार शम्बर ने सबसे बुरी अवस्था यह कही है- ''जहाँ पर आज का भी भोजन न हो और कल क्या होगा इसका भी कुछ अता-पता नहीं हो'' यही बड़ी दुर्दशा है।

संजय का निवेदन-

अपनी असमर्थता दिखाते हुए संजय ने अपनी माता से विनम्र वचन कहे- हे माता! मेरे पास कोश समाप्त हो चुका। कोई भी बलवान् अब मेरा सहायक नहीं। ऐसी विपन्न अवस्था में मेरी राज-काज से विरक्ति हो गई है। यदि आपको इस अवस्था में कोई उपाय सूझता हो तो मेरा मार्गदर्शन कीजिए। मैं आपकी आज्ञा को शास्त्राज्ञा मानकर स्वीकार करूँगा।

पुत्र संजय की इस प्रकार विनम्रता और विवशता को देख-सुन कर विदुला का ममत्व जाग उठा। उसका मुखमण्डल चमक उठा। अब तो उसने पुत्र को दिलासा देते हुए उसकी विजय की रूपरेखा ही बना दी।

विजय-प्राप्ति हेतु विदुला का निर्देश-

प्रिय पुत्र! तुम स्वयं को तुच्छ मत समझो। सबसे बड़े सहायक की खोज में बाहर खोजना बंद करो। तुम स्वयं ही अपने सबसे बड़े मित्र हो, सहायक हो और अपने शत्रु भी स्वयं आप ही हो। प्रमाद का त्याग करो। यह तेरी ''विजय-कामना अवश्य ही पूर्ण होगी''। बस ऐसी, आशा मन में रखकर पुनः युद्ध प्रयाण करो। मन में सोचो, गर्व से कहो- **अयं मे हस्तो भगवान् अयं मे भगवत्तरः**[१९]

इसी अदम्य भावना से तू शत्रुगण को ऐसे ही नष्ट-भ्रष्ट कर देगा, जैसे घनघोर बादलों की घटा को वेगवान् वायु छिन्न-भिन्न कर देता है। बेटा वीर नायक को कभी भयभीत नहीं होना चाहिए। यदि कभी मन के किसी कोने में दुर्बलता आ भी जाये तो उसे बाहर प्रकट मत करना। सेनानायक को असहाय, कमजोर देखकर सैनिक भी उसका साथ छोड़ने लग पड़ते हैं। बेटा! तुम्हारे पुरुषत्व प्रभाव और बुद्धि को उद्दीप्त करने के लिये मैंने ये वचन कहे हैं। वत्स यदि जानते हो कि मैं ठीक कह रही हूँ तो उठो विजय तुम्हारी बाट जोह रही, राह में खड़ी है।

बेटा! तुम्हे पता नहीं है। बता दूँ मेरे पास छुपा कर रखा हुआ कोष है। वह कोष मैं तुम्हें देती हूँ। अभी तक तुम्हारे बहुत से मित्र हैं। वे सब के सब विपत्ति में तुम्हारा साथ अवश्य देंगे। कोष और उन देशभक्त अग्निवीरों की सहायता से अपनी हार को जीत में बदल दो।

विदुलोपाख्यान की उपयोगिता-

विदुलोपाख्यान इतिहास की बात तो है ही इसके साथ-साथ इस उपाख्यान का सार्वदेशिक और सार्वकालिक महत्त्व भी है। क्योंकि इसमें वीर माता विदुला के मुख से निकले कुछ ऐसे वाक्य हैं जो सूक्तिरूप है और इनका सर्वसाधरण के लिए विशिष्ट महत्व है। ऐसे कतिपय उपदेश

वाक्य यहाँ उद्धृत हैं–

मुहूर्त्तं ज्वलितं श्रेयो न च धूमायितं चिरम्।
मा स्म कस्यचिद् गेहे जनि राज्ञः खरो मृदुः।।[२०]

सदाचार से परिपूर्ण, चिन्गारी की तरह प्रकाशित क्षणिक जीवन भला है, अच्छा है। किन्तु दुराचार से कलंकित दीर्घायु वाला जीवन तो निन्दित है। किसी राजा के घर मृदु अर्थात् सब कुछ सहने वाला और तीक्ष्ण अर्थात् कुछ भी न सह सकने वाला पुत्र जन्म न ले।

कृत्वा मानुष्यकं कर्म सृत्वाजिं यावदुत्तमम्।
धर्मस्यानृण्यमाप्नोति न चाऽऽत्मानं विगर्हते।।[२१]

आदमी मनुष्योचित सभी अच्छे कर्म करके युद्ध को जीत कर धर्म से उऋण (मुक्त) हो जाता है। वह फिर कभी अपने किये-कराये पर पश्चाताप भी नहीं करता।

यस्य वृत्तं न जल्पन्ति मानवा महद्अद्भुतम्।
राशिवर्धनमात्रं स नैव स्त्री न पुनः पुमान्।।[२२]

प्रजाओं में जिसके चरित्र की प्रशंसा नहीं होती वह तो केवल जन-संख्या बढ़ाने के लिए ही जन्मा है। वह किसी काम का नहीं। वह न तो स्त्री है और न ही पुरुष।

श्रुतेन तपसा वापि श्रिया
वा विक्रमेण वा।
जनान् योऽभिभवत्यन्यान्
कर्मणा हि स वै पुमान्।।[२३]

जो मनुष्य स्वाध्याय, तप, सत्साधनों से प्राप्त धन-सम्पत्ति अथवा पराक्रम से दूसरे लोगों से बढ़कर ही होता है वही पुरुष है।

स्व बाहुबलमाश्रित्य योऽभ्युज्जीवति मानवः।
स लोके लभते कीर्तिं परत्र च शुभां गतिम्।।[२४]

जो पुरुष अपने निजी बाहुबल के सहारे अपने जीवन के संग्राम में उतरता है वह इस लोक में कीर्ति और परलोक में सद्गति को प्राप्त करता है।

इसके आगे भी कुछ नीति वाक्य विदुला के मुख से निकले। ये नीति वाक्य बहुमूल्य, संग्रहणीय तथा अनुकरणीय हैं–

नैव राज्ञा दरः कार्यो जातु कस्याञ्चिदापदि।
अथ चेदपि दीर्णः स्यान्नैव वर्तेत दीर्णवत्।।[२५]

किसी भी विपद् में राजा को भयभीत नहीं होना चाहिए यदि डर भी जाए तो अपने डर को बाहर न लावे। अपने भय को सर्वथा छुपा कर रखे। ऐसा इसीलिए क्योंकि राजा को भयाक्रान्त देख-सुनकर मन्त्री, सेना तथा प्रजा सब भयभीत होकर निष्क्रिय हो जाएँगे।[२६] कुछ लोग शत्रु का आश्रय ले लेते हैं, कुछ साथ छोड़ देते हैं। शेष वे लोग जो पहले अपमानित हुए थे वे प्रहार करने की ताँक में रहते हैं। राजा को शोकग्रस्त पाकर उसके अपने बन्धु-बान्धव भी पराये हो जाते हैं।[२७]

राजा के विपद् में पड़ जाने पर भी जो लोग अपनी राष्ट्रभक्ति में अडिग रहते हैं, वे सर्वदा रक्षणीय और सम्मान के सर्वथा योग्य हैं। राजा उन्हें अपना बनाये रखे।[२८]

मानव ही क्या सभी प्राणियों पर यह बात

लागू होती है कि विपत्ति के समय अपनी मां ही सबसे बड़ा सहारा बनती है। संजय की मां भी उसके लिए आपद् के समय में तारणहार बनी। उसका शौर्य जाग पड़ा। बोल उठा- मां मैं धन्य हूँ जिसको आप सरीखी वीरमाता मिली।

भूत और भविष्य की द्रष्टा, दूरदर्शिनी जिसकी मां होगी वह तो बड़ी से बड़ी विपत्ति को भी पार कर लेगा। हे मेरी माता मैं तो आपके प्रेरणाप्रद उपदेश वाक्य सुनना चाह रहा था तभी तो बीच-बीच में अपनी भीति और शंकाओं के निवारण के लिए ऐसी-ऐसी बातों में आपको उलझाने का यत्न करता रहा। अब तो, मेरा सब डर-मोह दूर हो गया है। मैं आपसे नव शक्ति पाकर पुनः रणभूमि को प्रस्थान करता हूँ। मुझे आशीर्वाद दो मां! ताकि मैं विजयी बनकर लौटूँ और अपने देश का गौरव अक्षुण्ण रख कर आपकी कोख का गौरव बढाऊँ।

इतिहास साक्षी है कि जैसे अश्व चाबुक की की चोट से गन्तव्य की ओर सरपट दौड़ पड़ता है उसी भांति संजय ने भी विदुला मां के तीखे तीर-से वाक्यों से प्रेरित होकर शत्रुओं का मुख मोड़ दिया और अपने देश के वीर जनपद की रक्षा की थी।

साम्राज्ञी विदुला का व्यक्तित्व-

महाभारत की साम्रज्ञी विदुला कोई सामान्य नारी न थी। वह तो यशस्विनी, मन्युमती, कुलवन्ती, कूटनीति निष्णाता, क्षत्रधर्मरता, संयमशालिनी, विश्रुता, दीर्घदर्शिनी, राजसभाओं में प्रसिद्धिप्राप्त, शास्त्रसंम्मतभाषिणी, बहुत पढ़ी-लिखी महिला थी।[२९] उसके उपदेश-वाक्य भी सार्थक, सर्वथा उचित और गुण-गरिमा से मण्डित होते थे। ऐसे उपयोगी उपदेश की उपेक्षा कर रहे संजय को वह उपालम्भ देती है कि वह श्रेष्ठ वंश में जन्म लेकर पति के उच्च कुल में आई थी, मानों एक सरोवर से दूसरे सरोवर में प्रविष्ट हुई हो।[३०] पति से प्रेम (आदर) पाकर गृहस्वामिनी भी बनी।[३१] कोई भी याचक विशेषकर ब्राह्मण उसके घर से खाली नहीं लौटता था। उसने और उसके पति ने याचकों को मुंहमागा दान दिया।[३२] वह ऐसा तो कभी नहीं चाहती कि उसका पुत्र संजय शत्रुओं का ही पिछलग्गू बन जाये और उनको खुश करने लग पड़े। विदुला का कहना है कि वह - विधाता के बनाये सत्यसनातन क्षत्रिय धर्म को जिसे प्राचीनतम तथा नवीनतम विद्वान् धार्मिकों ने मान्यता दी है उस क्षत्रियोचित धर्म का सारतत्त्व मैं जानती हूँ।[३३] कूटनीति राजनीति के मामलों में वह लोहे के समान कठोर हृदय वाली **आयरन लेडी** है विदुला।[३४] वह ज्योतिषशास्त्र में पूर्ण विश्वास रखती है तभी तो अपने पुत्र को सान्त्वना देती है कि त्रिकालदर्शी ज्योतिषी ने तो बाल्यकाल में ही तेरा भविष्य कथन कर दिया था कि यह बालक तो अपने जीवनकाल में बहुत कष्ट पायेगा, किन्तु कष्ट भोगकर पुनः यह उन्नति के शिखर पर आरूढ होगा।[३५] इस प्रकार साम,दाम व

दण्ड,भेद की राजनीति में सम्यक् दीक्षित विदुला अपने पुत्र संजय को अन्ततः युद्ध के लिए तैयार करने में सफल होती है।

विदुलोपाख्यान की फलश्रुति-

महाभारतकार ने प्राचीन शास्त्रीय पद्धति के अनुसार विदुलोपाख्यान के श्रद्धापूर्वक श्रवण की फलश्रुति का कथन इस प्रकार चार श्लोकों में किया है :-

जयो नामेतिहासोऽयं श्रोतव्यो विजिगीषुणा
महीं विजयते क्षिप्रं श्रुत्वा शत्रूंश्च मर्दति।

इससे अगले तीन श्लोकों में कहा है कि- गर्भवती स्त्री पुत्रदायक इस आख्यान को श्रवण करके निश्चय ही वीर सन्तान को जन्म देगी। उसका पुत्र विद्याशूर, दानशूर, तपःशूर, तेजस्वी शक्तिमान्, भाग्यशाली, महारथी, धीरवीर, अपराजित, सदा विजयी, दुर्जनों का दमन करने वाला, धार्मिकों का रक्षक, सत्यपराक्रमी, इत्यादि गुणों से विभूषित होगा।...इति

---

१. भारत वर्षीय प्राचीन चरित्र कोश, द्वितीय आवृत्ति पृष्ठ सं ८४७, ले. सिद्धेश्वर शास्त्री चित्राव।
२. कुन्ती उवाच - अत्राप्युदाहरन्ती ममितिहासं पुरातनम्।
विदुलायाश्च संवाद पुत्रस्य च परन्तप।। - महाभारत उद्योग पर्वे १३१-१ (भण्डारकर पूना संस्क. १९७२)
३. भा. प्राचीन चरित्र कोश पृ. ८४७ कालम २ पर उद्धृत (म. आश्व. २०-२२)
४. वही (सन्दर्भ नं. ३) के साथ
५. महाभारत की कहानियाँ प्रथम सं. पृ. ६९, ले. देवदत्त
६. विदुला नाम राजन्या जगर्हे पुत्रमौरसम्।
निर्जितं सिन्दुराजेन शयानं दीन् चेतसम्।। विदुलोपाख्यान अ. १, श्लोक ४
७. विदुलोपाख्यान अध्याय १ श्लोक १-५
८. उत्तिष्ठ हे का पुरुष मा शेष्वैवं पराजितः।
अमित्रान्नन्दयन् सर्वान् निर्मानो बन्धुशोकदः।। विदुलोपा. १-८
९. त्वमेवं प्रेतयच्छेषे कस्माद् वज्रहतो यथा।
उत्तिष्ठ हे का पुरुष मा स्वाप्सी शत्रुनिर्जितः।। विदुलोपा. १-१२
१०. इष्टापूर्तं: हि ते क्लीब कीर्तिश्च सकला हता।
विच्छिन्नं भोगमूलं ते किं निमित्त हि जीवसि।। विदुलोपा. १-१९
११. सञ्जयो नाम त्वं न च पश्यामि तत्त्वयि।
अन्वर्थ नामा भव मे पुत्र मा व्यर्थनामकः।। विदुलोपा. २-७
१२. यदा मां चैव भार्यां च द्रष्टासि भृश दुर्बलाम्।
न तदा जीवितेनार्थो भविता तव सञ्जय।। विदुलोपा. २-१६
१३. युद्धाय क्षत्रियः सृष्टः सञ्जयेह जयाय च।
जयन् वा बध्यमानो वा प्राप्नोतीन्द्रसलोकताम्।। विदुलोपा. ३-१३
१४. विदुलोपाख्यान ३-१६

१५. विदुलोपाख्यान अ. ३ श्लोक ३,४
१६. विदुलोपाख्यान अध्या. २ श्लोक १४
१७. विदु. अध्या. २, श्लोक १६
१८. विदुलोपाख्यान अध्या. २, श्लोक २०
१९. अयं मे हस्तो भगवान् ऋग्वेद १०,६०,१२ अथर्ववेद १३,६,४
२०. विदुलोपाख्यान अध्या. १, श्लोक १५
२१. विदुलोपाख्यान अध्या. १ श्लोक १६
२२. विदुलोपाख्यान अध्या. १ श्लोक २३
२३. विदुलोपाख्यान अध्या. १ श्लोक २५
२४. विदुलोपाख्यान अध्या. १ श्लोक ४५
२५. विदुलोपख्यान अध्या. ४ श्लोक १
२६. विदुलोपख्यान अध्या. ४ श्लोक २
२७. विदुलोपख्यान अध्या. ४ श्लोक ३
२८. विदुलोपख्यान अध्या. ४ श्लोक ६
२९. यशस्विनी मन्युमाती कुले जाता विभावरी।
क्षत्रधर्मरता दान्ता विदुला दीर्घदर्शिनी।
विश्रुता राजसंसत्सु श्रुतवाक्या बहुश्रुता।।
विदुलानाम राजन्या जगर्हे पुत्रमौरसम्।
निर्जितं सिन्धुराजेन शयानं दीनचेतसम्।। विदुलोपख्यान अध्या. १ श्लोक २-४
३०. अर्थबन्त्युपपन्नानि वाक्यानि गुणवन्ति च।
नैव सम्प्राप्नुवन्ति त्वां मुमूर्षमिव भेषजम्।। विदुलोपख्यान श्लोक २-३
३१. अहं महाकूले जाता ह्रदाद् ह्रदमिवागता।
ईश्वरी सर्वकल्याणी भर्त्रा परमपूजिता। विदुलोपख्यान २-१४
३२. नेतिचेद् ब्राह्मणं ब्रूयां दीर्येत हृदयं मम।
न ह्यहं न च मे भर्ता नेति ब्राह्णमुक्तवान्।। विदुलोपख्यान २-१९
३३. यदि त्वामनुपश्यामि परस्य प्रियवादिनम्।
पृष्ठतोऽनुव्रजन्तं वा का शान्तिर्हृदयस्य मे।। विदुलोपख्यान २-३५
३४. अहं हि क्षत्रहृदयं वेद यत् परिशाश्वतम्।
पूर्वैः पूर्वतरैः प्रोक्तं परैः परतैरपि।। विदुलोपख्यान अध्या. २-३७
३५. कृष्णयसस्येब च ते संहत्य हृदयं कृतम्।
मम मातस्त्वकरुणे वीरप्रज्ञे ह्यमर्षणे।। विदुलोपख्यान अध्या. ३ श्लोक १

- वी. वी. बी. आई. एस एण्ड आई. एस. विभाग, पंजाब विश्वविद्यालय ,
साधु आश्रम, होशियारपुर।

सुन्द-उपसुन्दोपाख्यान

- मुकेश कुमार

वैदिक मन्त्र ज्ञानराशि के आकार तथा गूढार्थक हैं। इन मन्त्रों की व्याख्या विविध दृष्टियों से की गयी है। इनमें याज्ञिक, ऐतिहासिक एवं आख्यान, नैरुक्त, अधिदैवत, परिव्राजक एवं अध्यात्म और वैयाकरण प्रसिद्ध व्याख्यान पद्धतियाँ हैं।[१] इनमें ऐतिहासिक तथा आख्यान पद्धति विशेष विचारणीय हैं। निरुक्तकार यास्क ने ऐतिहासिक एवं आख्यान पद्धतियों का उल्लेख किया है। ये इन मन्त्रों अथवा सूक्तों की व्याख्या तदनुकूल ही करते हैं। यास्क ने 'तत्रेतिहास - माचक्षते'[२] कहकर कुछ मन्त्रों की इतिहासपरक व्याख्या प्रस्तुत की है। इसके साथ ही यास्क ने 'इत्याख्यानम्' शब्दों से आख्यानसमय का भी उल्लेख किया है। आख्यानविद् वैदिक सूक्तों तथा मन्त्रों में आये नामों अथवा घटनाओं को आधार बनाकर आख्यानों की उद्भावना करते रहे होंगे। इस प्रकार ऐतिहासिक वेदार्थ पद्धति के साथ-साथ आख्यानात्मक पद्धति भी प्रचलन में आयी। सम्भवत: पौराणिक साहित्य ने इस परम्परा से पर्याप्त प्रेरणा ग्रहण की हो। यास्क की स्पष्ट मान्यता है कि मन्त्रद्रष्टा ऋषियों की अपने द्वारा दृष्ट अर्थ को आख्यान से संयुक्त करने में प्रीति होती थी।[४]

अपने द्वारा दृष्ट इन अर्थों को प्रभावी एवं मनोहारी बनाने के लिए ऋषि उसे आख्यान से संयुक्त कर देते थे। आख्यानों अथवा उपाख्यानों का प्रादुर्भाव विषय को प्रभावोत्पादक एवं मनोहारी बनाने के लिए हुआ है। वैदिक काल से ही यह परम्परा अविच्छिन्न रूप से चली आ रही है। वेदों के तथा कथित संवाद-सूक्तों[५] से यह पद्धति और भी विकसित हुई है। यही आख्यानात्मक परम्परा पौराणिक साहित्य, आदिकाव्य रामायण के साथ-साथ महाभारत में भी विद्यमान है।

आङ् उपसर्गपूर्वक 'ख्या प्रकथने'[६] एवं 'चक्षिङ् व्यक्तायां वाचि'[७] इन दो धातुओं से भाव में 'ल्युट्' प्रत्यय करने पर 'आख्यानम्' शब्द निष्पन्न होता है। जिसका अर्थ है- कथनम्। साहित्यदर्पणकार ने आख्यान शब्द को परिभाषित करते हुए कहा है- 'आख्यानं पूर्ववृत्तोक्तिः।'[८] अर्थात् पूर्वघटित कोई वृत्तान्त, किस्सा, कथा, कहानी, अतीत घटना इत्यादि अनेक अर्थों के परिचायक हैं। आख्यान शब्द के सदृश ही उप एवं आङ् उपसर्ग से उपाख्यान शब्द बनता है। यह शब्द भी पूर्व घटित कथाओं या घटनाओं का

वाचक है। दोनों शब्दों में अन्तर यह है कि आख्यान विस्तृत क्षेत्र अथवा बृहद् कथावस्तु के लिए प्रयोग होता है, जबकि उपाख्यान से तात्पर्य लघु कथानक से है। किन्तु इन शब्दों का यह अन्तर भी महाभारत काल से ही दृष्टिगोचर होता है। महाभारत से पूर्व वैदिक साहित्य तथा रामायण में विद्यमान सभी सहायक कथाओं के लिए आख्यान शब्द का प्रयोग हुआ है। महाभारत काल के आते-आते आख्यान शब्द एक बृहद् कथावस्तु का वाचक बन गया। स्वयं महाभारत को कथाकार ने आख्यान कहा है-

यत्तु शौनकसत्रे ते भारताख्यानमुत्तमम्।
जनमेजयस्य तत् सत्रे व्यासशिष्येण धीमता।।[९]

इस प्रकार यह माना जा सकता है कि आख्यान का अभिप्राय मुख्य कथावस्तु से है तथा प्रसंगवश आयी कथावस्तु उपाख्यान रचना की दृष्टि से इसकी वही स्थिति होती है, जो रूपकों में प्रासंगिक कथावस्तु की होती है।[१०]

महाभारत में उपाख्यानों के विषयों में पृथक्तया वर्णन हुआ है। इसमें मूलकथा के अतिरिक्त उपाख्यानों की स्थिति है। विकास क्रम में यह महाकाव्य महाभारत के नाम से तब जाना गया जब इसमें अनेक उपाख्यानों का समावेश हो गया-

उपाख्यानैः सह ज्ञेयमाद्यं भारतमुत्तमम्।[११]

वस्तुतः आख्यान तथा उपाख्यान के कलेवर का निर्धारण करना अत्यन्त कठिन है।

महाभारत में मूलकथा के अतिरिक्त अनेक उपाख्यान, संवाद, देवों की स्तुति, धार्मिक परिचर्चा इत्यादि अनेक विषय समाविष्ट हैं। इस ग्रन्थ को 'शतसाहस्री' के रूप में परिणत करने के लिए इन सहायक कथाओं का महत्त्वपूर्ण योगदान है। इसमें पुरुषार्थचतुष्टय, दार्शनिक, आध्यात्मिक, राजनैतिक, आर्थिक इत्यादि सभी विषयों पर चर्चा हुई है। इसलिए महाभारत के लिए यह सूक्ति पूर्णतया सटीक बैठती है कि जो कुछ महाभारत में वर्णित है, वहीं भारतवर्ष में पाया जाता है। जो महाभारत में नहीं है, वह अन्यत्र भी नहीं है-

धर्मे चार्थे च कामे च मोक्षे च भरतर्षभ।
यदिहास्ति तदन्यत्र यन्नेहास्ति न तत् क्वचित्।।[१२]

वर्ण्य-वस्तु की दृष्टि से महाभारत के उपाख्यान आठ विषयों में विभक्त किये गये हैं-

१. देवता विषयक आख्यान
२. ऋषि विषयक आख्यान
३. राजा विषयक आख्यान
४. उपदेशपरक आख्यान
५. पशु-पक्षी एवं जीव-जन्तु विषयक आख्यान
६. गुरु-शिष्य विषयक आख्यान
७. प्रकीर्ण आख्यान

महाभारत के आदिपर्व में दो सौ आठवें अध्याय से लेकर दो सौ ग्यारहवें अध्याय तक सुन्द-उपसुन्द आख्यान प्राप्त होता है।[१३] विषय-वस्तु की दृष्टि से यह उपदेशपरक आख्यान है।

इसकी संक्षिप्त कथावस्तु इस प्रकार है-

प्राचीनकाल में दैत्यराज हिरण्यकशिपु के कुल में पराक्रमी निकुम्भ नामक दैत्य पैदा हुआ। इसी निकुम्भ नामक राक्षस के सुन्द एवं उपसुन्द नामक दो महाबली पुत्र उत्पन्न हुए। इन दोनों का एक ही निश्चय होता था तथा दोनों एक ही कार्य के लिए सहमत होते थे। युवावस्था में दोनों भाइयों ने त्रिलोक विजय की इच्छा की। अपनी कामना की पूर्ति के लिए दोनों दैत्यों ने गुरु से दीक्षा लेकर विन्ध्य पर्वत पर कठोर तपस्या प्रारम्भ कर दी।[१४] दोनों दैत्यों की उग्र तपस्या से समस्त देवता भयभीत हो गए।[१५] देवताओं ने उनकी तपस्या भंग करने के लिए अनेक उपाए किये। देवों ने बार-बार रत्नों के ढेर, माया निर्मित स्त्रियाँ, राक्षसादि उनके तपोभंग हेतु भेजे; परन्तु उनकी तपस्या को किसी प्रकार से भंग नहीं किया जा सकता। तब अन्त में पितामह ब्रह्मा ने प्रकट होकर उन्हें इच्छानुसार वर माँगने के लिए कहा। साक्षात् पितामह को उपस्थित देख प्रसन्न हुए दोनों भाई बोले- भगवान्! हम दोनों सम्पूर्ण माया के ज्ञाता हों, अस्त्र-शस्त्रों के महारथी एवं अमरत्व को प्राप्त करें।[१६]

चूँकि सुन्द-उपसुन्द दोनों दैत्यों ने त्रिलोकी पर विजय पाने के लिए तपस्या का आश्रय लिया था, इसलिए ब्रह्मा ने अमरत्व प्राप्ति का वर नहीं दिया। इस पर दोनों राक्षसों ने कहा कि हम दोनों को छोड़कर त्रिलोक के किसी भी प्राणी से हमारी मृत्यु न हो।[१७] 'तथास्तु' कहकर ब्रह्मा ब्रह्मलोक में चले गये। प्रजापति से अवध्य होने का वरदान पाकर दोनों दैत्यों ने अपनी राक्षसी सेना तैयार की तथा देवलोक और पृथ्वीलोक पर आक्रमण कर दिया।[१८] उन्होंने अनेक स्वाध्यायशील ब्राह्मणों एवं तपस्वियों को यमलोक पहुंचा दिया, आश्रमों को उजाड़ दिया, कन्दराओं में छिपे मुनियों का वध कर दिया। उन्होंने समस्त धार्मिक कृत्य बंद करवा दिये। इस प्रकार क्रूर कर्मों द्वारा दोनों भाईयों ने तीनों लोकों पर विजय प्राप्त कर ली। सुन्द-उपसुन्द के अत्याचारों से पीड़ित हुए देवता प्रजापति ब्रह्मा की शरण में गये। प्रजापति ने उन दोनों के अत्याचारों को सुनकर उनके वध का निश्चय करके विश्वकर्मा को बुलाया। प्रजापति की आज्ञा से विश्वकर्मा ने भली-भाँति विचार कर एक दिव्य युवती का निर्माण किया; जो अपने रूप-सौन्दर्य में तीनों लोकों की स्त्रियों में अनुपम थी। विश्वकर्मा ने उत्तम रत्नों का तिल-तिल अंश लेकर उसके अंगों का निर्माण किया इसलिए प्रजापित ने उसका नाम तिलोत्तमा रखा।

तिलं तिलं समानीय रत्नानां यद् विनिर्मिता।
तिलोत्तमेतितत्तस्या नाम चक्रे पितामहः।।[१९]

तत्पश्चात् प्रजापति ने उस सुन्दरी को दोनों भाइयों में विरोध करवाने के लिए भेजा। इधर सम्पूर्ण पृथ्वी को जीतकर दोनों दैत्य अकर्मण्य होकर भोग-विलास में लीन हुए एक दिन विन्ध्य पर्वत के शिखर पर विहार करने के लिए गये।

तिलोत्तमा भी पुष्प चयन के बहाने सुन्दर सूक्ष्म वस्त्र धारण किए हुए उन दोनों भाइयों के सामने आयी। तिलोत्तमा के उस अनुपम सौन्दर्य एवं वेशभूषा को देखकर दोनों दैत्य भाई कामवेदना से व्यथित हो गये। उन दोनों ने उसे अपनी भार्या बनाने का प्रयास किया। सुन्द ने उपसुन्द से कहा कि यह मेरी भार्या है; अतः छोटे होने के कारण तुम्हारे लिए माता के समान है। इस पर उपसुन्द ने कहा कि यह मेरी भार्या है; सो तुम्हारे लिए पुत्रवधू के समान है। इस प्रकार पहले मैं इसे प्राप्त करूँगा। इस प्रकार अहमहमिकया विवाद करते हुए दोनों एक दूसरे पर प्रचण्ड प्रहार करने लगे और परस्पर गदाओं के आघात से वे दोनों मृत होकर पृथ्वी पर गिर पड़े।[२०]

समीक्षा-

द्रौपदी स्वयंवर के अनन्तर कुरुवंशी महाराज धृतराष्ट्र ने पाण्डवों को द्रुपद के यहाँ से बुलवा कर उन्हें खाण्डवप्रस्थ के रूप में आधा राज्य दिया। पाण्डवों ने अथक परिश्रम से आधे राज्य के रूप में प्राप्त खाण्डवप्रस्थ की भूमि पर इन्द्रप्रस्थ नामक भव्य नगर का निर्माण किया। पाण्डव माता कुन्ती एवं द्रौपदी के साथ वहाँ सुखपूर्वक रहने लगे। कुछ समय व्यतीत होने पर एक दिन नारद जी का आगमन हुआ। अतिथि सत्कार के अनन्तर नारद जी ने पाण्डवों को सुन्द-उपसुन्दोपाख्यान सुनाया। उपाख्यान सुनाने का उद्देश्य पाण्डवों में परस्पर प्रीति बनाये रखना था। सौन्दर्यशालिनी एवं यशस्विनी पांचाली पाँच पाण्डवों की धर्मपत्नी के रूप में स्वीकृत हुई थी, अतः द्रौपदी के विषय में पाण्डवों में कलह पैदा न हो, इसलिए बुद्धिमान् नारद ने इस विषय में नियम बनाने के लिए कहा- **यथा वो नात्र भेदः स्यात् तथा नीतिर्विधीयताम्।**[२१]

महाभारतकालीन युग में एक पुरुष के अनेक पत्नियाँ तो मिलती है, परन्तु एक स्त्री के अनेक पति हो ऐसा दृष्टिगत नहीं होता। संसार में प्रायः यह देखा जाता है कि जो व्यक्ति किसी भी प्रकार से खण्डित नहीं होता, उसे एक नारी सम्पूर्ण रूप से बदल सकती है। परस्पर मिल-जुल कर रहने वाले भाइयों के मध्य में एक नारी विद्रोह उत्पन्न करवा देती है। इतिहास में अनेक ऐसे उदाहरण है जहाँ स्त्री के रूप-सौन्दर्य को देखकर पुरुष धर्यच्युत हुए हैं। बड़े-बड़े तपस्वियों ने नारी के रूप-सौन्दर्य में फंसकर अपनी तपस्या को व्यर्थ किया है। पांचालतनया द्रौपदी भी रूपवती एवं सौन्दर्यसम्पन्न थी तथा वह अकेली पाँच महारथियों की पत्नी भी थी। पाण्डव हितैषी नारद ने उनको यह उपाख्यान इसलिए सुनाया ताकि रूप अपूर्व सम्पन्न द्रौपदी के कारण पाण्डवों में किसी प्रकार का कलह उत्पन्न न हो। वर्तमान युग में भी यह आख्यान चञ्चल एवं दिग्भ्रान्त युवक-युवतियों के लिए अत्यन्त उपादेय है।

१. वैदिक इतिहासार्थ, वेद व्यास, गीता प्रैस गोरखपुर

२. निरुक्त, यास्क, पृ. ३८, ४४, १५०, १६५, १९२
३. निरुक्त, यास्क, पृ. ९१, १७८, १८०, १८३
४. ऋषेर्दृष्टार्थस्य प्रीतिर्भवत्याख्यानसंयुक्ता। वैदिक इतिहासार्थ निर्णय, अध्याय-१०, पृ. १६०
५. ऋग्वेद, विश्वामित्र-नदी ३/३३, यम-यमी १०/१०, पुरुरवा-उर्वशी १०.९३
६. 'ख्या प्रकथने, अदादि., परस्मै., सकर्मक, अनिट् धातु पाठ सं २.५५
७. 'चक्षिङ् व्यक्तायां वाचि' अदादि., आत्मने., सकर्मक, सेट्, धातुपाठ सं. ०७
८. साहित्यदर्पण, विश्वनाथ, परि. ६.२११
९. महाभारत, वेदव्यास, आदिपर्व २.३३
१०. तत्राधिकारिकं मुख्यमङ्गं प्रासङ्गिकं विदुः। दशरूपक, धनिक-धनञ्जय, १.११
११. महाभारत, वेदव्यास, आदिपर्व १.१०१
१२. वही, ६२.५३ १३. वही, २०८-२११
१४. वही, २०८, ८-९ १५. वही, २०८.१०
१६. वही, २०८.२० १७. वही, २०८-२४
१८. वही, २०९.२ १९. वही, २१०.१८
२०. वही, २१०.१९-२० २१. वही, २०७.१८

- असिस्टैंट प्रोफेसर, राजकीय महाविद्यालय, हिसार (हरियाणा)

PEER REVIEWED JOURNAL
ISSN 0505-7523

विश्वज्योति वर्ष: ७३, सं.३-४
जून-जुलाई ,२०२४

'महाभारत' की भूमिका का आधार

- आदित्य आंगिरस

(हजारी प्रसाद द्विवेदी के विचार प्रधान निबंधों में शास्त्र का लोक संदर्भ में मूल्यांकन करते हुए परंपरा और आधुनिकता का जैसा मेल दिखाई देता है वैसा मूल्यांकन हिन्दी साहित्य में कम ही देखने को मिलता है। उनके लगभग सभी निबंधों में उनकी वैज्ञानिक चेतनासंपत्र एक ऐसी सामाजिक-सांस्कृतिक दृष्टि मिलती है, जिसका पहला और अन्तिम लक्ष्य मनुष्य है। आचार्य द्विवेदी ने महाभारत के संदर्भ में भी ''भीष्म को क्षमा नहीं किया'' नामक निबंध लिखा जिसे राजकमल प्रकाशन ने 'आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के श्रेष्ठ निबन्ध' नामक ग्रन्थ में प्रकाशित किया है। इस पत्र का वास्तविक आधार आचार्य द्विवेदी का यही निबंध है।)

महाभारत की भूमिका के विषय में कुछ भी कहने से पूर्व पितामह भीष्म के चरित्र के बारे में बताना यहां एक आवश्यकता बन जाती है क्योंकि इतिहास के पन्नों में भीष्म पितामह ''जैसा धर्मात्मा और ज्ञानी खोजना कठिन है। महाभारत का शान्तिपर्व उसका गवाह है[१]।'' आचार्य द्विवेदी के अपने शब्दों में ''भीष्म अपने बम-भोलानाथ गुरु परशुराम से अधिक सन्तुलित, विचारवान और ज्ञानी हैं[२]'' इन्हीं संदर्भों में आचार्य द्विवेदी कहते हैं कि ''वे श्रेष्ठतम इतिहासविद् हैं एवं अपने अगाध इतिहासबोध के कारण. युधिष्ठिर के हर प्रश्न के उत्तर में वह प्राय- यह कहकर शुरू करते हैं -'अत्राप्यु-दाहरन्तीमितिहासं पुरातनम्[३]''। परन्तु फ़िर ऐसा क्या घटित हुआ जिसके कारण पितामह भीष्म को अपराधी माना जाता है। पाँच हजार वर्ष बीत गये और अब तक बेचारे भीष्म पितामह को क्षमा नहीं किया गया. भविष्य विकट असहिष्णु है[४]। अत: आचार्य द्विवेदी के अनुसार पितामह भीष्म के विषय में हिन्दी साहित्य चिन्तक बहुधा में जो आक्षेप लगाते हैं वह कुछ इस प्रकार है ''कल्पना से भी भीष्म की चुप्पी समझ में नहीं आती. इतना सच जान पड़ता है कि भीष्म में कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य के निर्णय में कहीं कोई कमजोरी थी। वे उचित अवसर पर उचित निर्णय नहीं ले पाते थे. यद्यपि वह जानते बहुत थे, तथापि कुछ निर्णय नहीं ले पाते थे। कौरवों की सभा में भीष्म ने द्रौपदी का भयंकर अपमान देखकर भी जिस प्रकार मौन धारण किया था[५]। वे स्वयं ही इस तथ्य को स्वीकार करते हैं कि प्राचीनकाल में भीष्म जैसा

धर्मात्मा और ज्ञानी खोजना कठिन है. महाभारत का शान्तिपर्व उसका गवाह है. कोई समस्या तो भले आदमी ने छोड़ी नहीं. प्राचीन काल के ज्ञानियों में भीष्म मुझे सबसे अधिक प्रभावित करते हैं, . (यहाँ भी लोग इस पुराने इतिहास का उदाहरण देते हैं) ।

इन्हीं संदर्भों में यहां यह कहना उचित होगा कि महाभारत की वास्तविक भूमिका के वास्तविक कारणों का तार्किक विश्लेषण करना यहां एक अनिवार्यता बन जाती है कि वास्तव में क्या पितामह भीष्म की चुप्पी का कारण उनकी सही निर्णय लेने की स्थिति को द्योतित करती थी अथवा कोई अन्य कारण भी थे जिन्हें इतिहास एवं साहित्यविद् जान बूझ कर अथवा अन्जाने में उपेक्षा करते रहे हैं। इस संदर्भ में कुछ भी कहने से पूर्व प्रथमतया महाभारत में आगत पितामह भीष्म के आगत घटना क्रम एवं चरित्र के विषय में जानना यहां एक आवश्यकता बन जाती है कि उनकी चुप्पी का वास्तविक कारण क्या रहा जिसने उनके निर्णय लेने में क्षमता को प्रभावित कर उन्हें असमर्थ घोषित किया अथवा कतिपय कोई अन्य कारण भी हो सकते हैं।

धर्म की उपेक्षा

इस तथ्य का वास्तविक रूप में विश्लेषण करने से पहले महात्मा भीष्म के वास्तविक जीवन की पृष्ठभूमि के विषय में जानना यहां एक आवश्यकता बन जाती है[६] ।

महात्मा भीष्म का वर्णन मुख्य रूप से महाभारत के आदिपर्व में आता है जिसमें वे चंद्र वंश के राजा शांतनु और उनकी पहली पत्नी गंगा के देवव्रत नामक एकमात्र जीवित पुत्र थे जो द्यौ उर्फ प्रभास नामक वसु के अवतार थे[७]। ऐसे में उनका पालन-पोषण और विद्या एवं प्रशिक्षण कई प्रतिष्ठित ऋषियों द्वारा किया गया[८] जिनमें बृहस्पति और शुक्राचार्य सनतकुमार ऋषि वशिष्ठ च्यवन मार्कंडेय और परशुराम प्रमुख हैं। ऐसे में महात्मा भीष्म के शिक्षा दीक्षा एवं व्यक्तित्व के विषय में कोई संशय नहीं होता है।

महाभारत में वर्णन आता है कि राजपुत्र, दिव्य पृष्ठभूमि और योग्यता के कारण नागरिकों में उनका सम्मान था। अतः गुण एवं व्यवहार के कारण देवव्रत को शान्तनु का राज्य पद का उत्तराधिकारी बनाया गया। परन्तु शांतनु और सत्यवती के प्रेम प्रसंग के चलते हुए उन्होंने आजीवन ब्रह्मचर्य का व्रत लिया एवं अपने पिता की खुशी के लिए देवव्रत ने सिंहासन पर अपना अधिकार छोड़ दिया। इस प्रकार उन्होंने भी कभी बचपन में पिता की गलत आकांक्षाओं की तृप्ति के लिये भीषण प्रतिज्ञा की थी वह आजीवन विवाह नहीं करेंगे अर्थात् सभी सम्भावना को ही नष्ट कर देंगे कि उनके पुत्र होगा और वह या उसकी सन्तान कुरुवंश के सिंहासन पर दावा करेगी[९]। वह भी ब्रह्मचारी थे - बालब्रह्मचारी! पर भीष्म जब अपने निर्वीर्य भाइयों के लिये कन्याहरण कर लाये

और एक कन्या को अविवाहित रहने को बाध्य किया, तब उन्होंने भीष्म के इस अशोभन कार्य को क्षमा नहीं किया, समझाने-बुझाने तक ही नहीं रुके, लड़ाई भी की। पर भीष्म अपनी प्रतिज्ञा के शब्दों से ही चिपटे रहे. वह भविष्य नहीं देख सके, वह लोककल्याण को नहीं समझ सके।[१०] भीष्म ने ''भीषण'' को ही चुना था। एवं यहीं भीषण को चुनने के पीछे के कारण का विश्लेषण करना एक आवश्यकता जान पडती है। यहां एक बात तो निश्चित है कि मत्स्यगंधा के दोनो ही पुत्र निर्वीय थे। ऐसे में निर्वीय भाईयों की वंश रक्षा के लिये एवं राज सत्ता की रक्षा के लिये दत्त वचन के कारण क्या उनकी निर्णयात्मक शक्ति एवं वचन के लिये महाराज शान्तनु को दिये वचन श्रद्धापूर्वक अनुपालन पर किसी प्रकार की शंका नहीं होती।

इन्हीं संदर्भों मे तैत्तरीयोपनिषद में आगत गुरु द्वारा शिष्य को दिये जा रहे उपदेश मुझे बरबस याद आते हैं जिसमें आचार्य शिष्य को पिता को देवता सदृश बताते हैं। यह बात तो स्पष्ट है कि पितामह भीष्म का जन्म एक ऐसे युग में हुआ जहां शिष्य को अपने वचन में स्थित रहना सिखाया जा रहा था। अत- पितामह द्वारा भीषण के चुनाव में अदूरदर्शिता न होकर पिता के प्रति भावनात्मक रूप से प्रतिबद्धता थी जिसे पितामह ने अपनी बाल्यावस्था में आर्ष परम्परा के माध्यम से ग्रहण किया। इसी कारण यदि पिता की प्रसन्नता के लिये आत्मदान देने का कार्य किया तो ऐसे में आश्चर्य नहीं होना चाहिये। वे अपने वचन के प्रति सजग थे एवं वाणी एवं शब्द के मिथ्यात्व के प्रति सचेतन रहे जो कि वास्तव में ही सराहनीय है एवं साथ ही उनका वचन के प्रति निष्ठा उनकी दृढात्मक निश्चय शक्ति का प्रतीक बनती है इन्हीं संदर्भों में कठोपनिषद के नचिकेता का प्रसंग बरबस ही स्मरण हो आता है जहां पिता के वचन के प्रति सजग रह कर यमलोक का चयन करते है।[११] जहां वे परम ज्ञान को प्राप्त करते हैं। शान्तनु का दूसरा विवाह निषाद कन्या सत्यवती से हुआ था। इस विवाह को कराने के लिए ही देवव्रत ने राजगद्दी पर न बैठने और आजीवन कुँवारा रहने की भीष्म प्रतिज्ञा की जिसके कारण उनका नाम भीष्म पड़ा ।

वस्तुत: यदि हम ध्यान से देखें तो महाराज शान्तनु ने जहां एक ओर पितृधर्म की उपेक्षा की वहीं दूसरी ओर राजधर्म की भी उपेक्षा की। यह मैं इसलिये कह रहा हूं कि जहां महाराज शान्तनु को राजधर्म के आदर्शों का पालन करना चाहिये था वहीं वे राज धर्म की उपेक्षा कर सामान्य व्यक्ति की भान्ति देह-धर्म के पालन में उद्यत हुए। नीति वचनों के अनुसार समाज में जो महान व्यक्ति कार्य करता है वह लोक में न केवल उद्धरित किया जाता है अपितु साधारण बुद्धि के लोक में उस कर्म एवं व्यवहार का अनुवर्तन किया जाता है। यदि महाराज शान्तनु पुत्र प्राप्ति के बाद अपने आचरण पर ध्यान देते तो निश्चित रूप से जीवन में स्त्री संग

के अतिरिक्त भी कार्य हो सकते है जिन्हें उन्हें करना चाहिये था। महाराज शान्तनु ने न केवल राजधर्म के विपरीत आचरण किया अपितु वास्तविक पुत्र प्रेम की अवहेलना कर देवव्रत के यौवन पर प्रश्नचिन्ह खड़ा किया।

वहीं दूसरी ओर धीवर कन्या सत्यवती के पिता के दिये वचन पर भी अडिग रहे जो कि उनकी अपने वचन में स्थित रहने की कला का परिचायक है जिसमें राजसत्ता के प्रति उनकी आस्था द्रष्टव्य है। हरिवंश पाठ में उल्लेख है कि शांतनु की मृत्यु के बाद शोक की अवधि के दौरान, भीष्म ने पांचाल साम्राज्य के एक राजनेता उग्रायुध पौरव को मार डाला, जो सत्यवती के लिए वासना करता था और उसे धन से खरीदने की कोशिश करता था।[१३] महाभारत के अनुसार , चित्रांगद को राजा के रूप में ताज पहनाया गया था, हालांकि, जल्द ही उन्हें एक गंधर्व द्वारा मार दिया गया था। भीष्म ने चित्रांगद का अंतिम संस्कार किया।[१४] विचित्रवीर्य, जो शासन करने के लिए बहुत छोटा था, को भीष्म द्वारा राजा के रूप में ताज पहनाया गया था, लेकिन उसके वयस्क होने तक राज्य का वास्तविक नियंत्रण सत्यवती के अधीन था। भीष्म ने उस दौरान सत्यवती की सहायता की। अर्थात् पिता के स्वर्गवासके पश्चात् भी उनकी अपने वचन में पवित्रता एवं प्रतिबद्धता के प्रति एक निश्चित आस्था बनी रही जो उनकी निर्णयात्मक शक्ति एवं निश्चियात्मक बुद्धि को द्योतित करता है।

वहीं दूसरी ओर उद्योग पर्व में अम्बा के साथ-साथ भीष्म और परशुराम के बीच युद्ध के बारे में भी बताया गया है। जब अंबा ने शाल्व से विवाह करने का अनुरोध किया, तो उसने उसे अस्वीकार कर दिया। कालान्तर में वही महाभारत के युद्ध में शिखंडी नाम से जाना जाता है।[१६]

कुरु साम्राज्य के मामले

अपने पिता की मृत्यु के बाद एवं विचित्रवीर्य के तपेदिक द्वारा मरने के बाद महात्मा भीष्म ने कुरु साम्राज्य के उत्तराधिकार के संकट में अपने वचन के अनुसार संरक्षक के रूप एक प्रमुख भूमिका निभाई। अन्धे होने के कारण धृतराष्ट्र एवं गांधारी ने अपनी समस्त आकांक्षाएं एवं इच्छा पूर्ति का साधन अपने पुत्रों को बनाया अर्थात् जो जानबूझ कर कौरवों की गलत आकांक्षाओं को स्वीकार कर केवल उन्हीं को अग्रसर करते रहे वरना शकुनि का अपने बहन के ससुराल में रहने को आप क्या कह सकते हैं ?

यह तथ्य निश्चित ही महत्त्वपूर्ण है कि कौरवों का अपने चचेरे भाइयों के लिये से बचपन से ही सद्भाव नहीं रहा और उन्होंने कई बार उन्हें मारने की कोशिश की। दुर्योधन का "बिना लडे सुई की नोक देने" एवं "जानामि धर्मम न मे प्रवृति" का उद्घोष स्वयं में ही कौरवों के दुर्भाव क स्वयं परिचय देता है। भीष्म हस्तिनापुर में जुए

के खेल के दौरान उपस्थित थे जहाँ द्रौपदी को भरे दरबार में अपमानित किया गया था। जब उसने खेल में युधिष्ठिर के हारने पर उसके धर्म पर प्रश्न उठाया, तो भीष्म ने कोशिश की, लेकिन उसका उत्तर देने में असफल रहे और धर्म को सूक्ष्मतत्त्व का विशद विवेचन किया ताकि कौरवों एवं पांडवों को धर्म का निश्चित स्वरूप का पालन करने की अपेक्षा की जो कि स्वयं में गलत नहीं कहा जा सकता।[१७]

वहीं दूसरी ओर हम वन पर्व में पितामह भीष्म का उद्घोष दिखाई पडता है जिसमें वे स्पष्ट रूपसे कहते है कि मेरी बात सुनने एवं समझने के लिये कोई भी व्यक्ति तैयार ही नहीं। पितामह भीष्म इस ज्वलन्त तथ्य ''उपदेशो हि मूर्खेषु प्रकोपाय न शान्तये'' से परिचित थे। ऐसा नहीं है कि पितामह भीष्म ने कौरवों एवं पाण्डवों को समझाने का प्रयास न किया हो परन्तु जिनका मन ही कोप एवं दुष्टता से प्रेरित होने के कारण विक्षिप्त हो तो यह स्थिति मूर्खों के राज्य में अरण्यरोदन की अर्थवत्ता यहां स्वयं में उत्तर देती है। ऐसा नहीं कि वे घटनाक्रम को जानते न हों अथवा उन्होंने कुल सब से बृद्ध हो कर कौरवों को बुद्धि प्रदान करने का प्रयास न किया हो परन्तु दुर्योधन द्वारा उनकी बात को न मानना वास्तव में नियति की विडम्बना के साथ एक सत्पुरुष की दुर्जन कैसे दुर्गति करते हैं यह स्वयं में महाभारत की वास्तविक कथा से जो परिचित है उनको यह स्वीकार करने मे हिचक न होगी।

ऐसे में पितामह भीष्म के चरित्र पर आक्षेप का प्रश्न कितना सार्थक हो सकता है। वस्तुतः यही विचारणीय प्रश्न स्वयं में ही उपस्थित हो जाता है जबकि उपरोक्त कारणों के चलते हुए वे करुणा एवं सहानुभूति के पात्र अधिक बनते दिखाई देते हैं।

---

१. आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के श्रेष्ठ निबन्धः भीष्म को क्षमा नहीं किया
२. आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के श्रेष्ठ निबन्धः भीष्म को क्षमा नहीं किया
३. आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के श्रेष्ठ निबन्धः भीष्म को क्षमा नहीं किया
४. आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के श्रेष्ठ निबन्धः भीष्म को क्षमा नहीं किया
५. आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के श्रेष्ठ निबन्धः भीष्म को क्षमा नहीं किया
६ Ganguli, Kisari Mohan (1883–1896). "SECTION CIII". The Mahabharata: Book 1: Adi Parva. Sacred texts archive.
७. Hudson, Emily T. (2013). Disorienting Dharma: Ethics and the Aesthetics of Suffering in the Mahabharata. OUP USA. ISBN 978-0-19-986078-4.
८. Gandhi, Maneka (2004). The Penguin Book of Hindu Names for Boys. Penguin Books India. ISBN 978-0-14-303168-0.
९. आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के श्रेष्ठ निबन्धः भीष्म को क्षमा नहीं किया

१०. आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के श्रेष्ठ निबन्ध: भीष्म को क्षमा नहीं किया
११. कठोपनिषद् 1.1-2
१२. आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के श्रेष्ठ निबन्ध: भीष्म को क्षमा नहीं किया
१३. Narasimhan, Chakravarthi V. (1999). The Mahābhārata: An English Version Based on Selected Verses. Motilal Banarsidass Publ. ISBN 978-81-208-1673-2.[17]
१४. Narasimhan, Chakravarthi V. (1999). The Mahābhārata: An English Version Based on Selected Verses. Motilal Banarsidass Publ. ISBN 978-81-208-1673-2.[3] [18]
१५. Narasimhan, Chakravarthi V. (1999). The Mahābhārata: An English Version Based on Selected Verses. Motilal Banarsidass Publ. ISBN 978-81-208-1673-2.
१६. Hudson, Emily T. (2013). Disorienting Dharma: Ethics and the Aesthetics of Suffering in the Mahabharata. OUP USA. ISBN 978-0-19-986078-4. [20]
१७. Gandhi, Maneka (2004). The Penguin Book of Hindu Names for Boys. Penguin Books India. ISBN 978-0-14-303168-0

– वी. वी. बी. आई. एस एण्ड आई. एस., असोसियेट प्रोफेसर,
पंजाब विश्वविद्यालय पटल, साधु आश्रम, होशियारपुर।

PEER REVIEWED JOURNAL
ISSN 0505-7523

महाभारत का नलोपाख्यान

- भूपेन्द्र सिंह

महाभारत हमारी भारतीय संस्कृति का अत्यन्त प्राचीन महाकाव्य है। भारतीय सभ्यता का भव्य रूप इस ग्रन्थ में जिस प्रकार दृष्टवत है वैसा अन्यत्र नहीं। कौरवों और पाण्डवों का इतिहास वर्णन ही इस ग्रन्थ का उद्देश्य नहीं है,अपितु हमारे हिन्दू धर्म का विस्तृत एवं पूर्ण चित्रण भी विद्यमान है। महाभारत का शान्तिपर्व जीवन की समस्याओं को सुलझाने का कार्य हजारों वर्षो से करता आ रहा है। इसलिये इस इतिहास ग्रन्थ को हम अपना धर्म ग्रन्थ मानते आये हैं। जिसका पठन-पाठन, श्रवण-मनन सब प्रकार से हमारे लिये कल्याणकारक है। महाभारत ने अधर्म के नाशपूर्वक धर्म की विजय प्रदर्शित करते हुए कर्म के जिस महामन्त्र का उच्च उद्घोष किया, वह भारतीय संस्कृति और भारतीयता का एक निजी वैशिष्ट्य ही बन गया।

महाभारत के इस सार्वभौमिक महत्व को देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि यह अत्यन्त प्राचीन महाकाव्य है, किन्तु उसको न तो हम वैदिक ग्रन्थ ही कह सकते हैं, न पुराण ही, न इतिहास ही, न महाकाव्य ही, न एक धर्मग्रन्थ ही, और न केवल सामाजिक-सांस्कृतिक चेतना का प्रतिनिधि ग्रन्थ ही, वस्तुतः वह एक बृहद् राष्ट्र का ज्ञानसर्वस्व होने के कारण आर्ष ग्रन्थ भी है, इतिहास-पुराण भी है और महाकाव्य, धर्मग्रन्थ आदि सभी कुछ है। इस प्रकार यह समझना चाहिए कि उसके प्रत्येक अंश में आकाश को स्पर्श करने जितना उत्कर्ष विद्यमान है। 'महाभारत' से सामान्यतया कौरव पांडवों के सुप्रसिद्ध महायुद्ध का आभास होता है, किन्तु महाभारत का वास्तविक उद्देश्य है- मनुष्य जाति को भौतिक जीवन की निःसारता को दिखाकर उसे मोक्षमार्ग पर निर्दिष्ट करना। महाभारत का स्वरूप एक ऐसे विश्वकोश का सा है, जिसमें प्राचीन भारत की ऐतिहासिक, धार्मिक, दार्शनिक सभी प्रकार की अमूल्य निधि सुरक्षित हैं। तत्कालीन युग तक ज्ञान की जो धरोहर भारतवर्ष में संचित होती रही थी, वह सारी ही ज्ञानराशि इस महाभारत में एकत्रित हो गई है। स्वयं महाभारत के आदि पर्व में ही इस ग्रन्थ के विश्वकोशात्मक स्वरूप का कथन किया गया है। भारतीय लौकिक साहित्य में रामायण के पश्चात् महाभारत का ही स्थान है। कौरव और पाण्डवों का इतिहास वर्णन ही इस ग्रन्थ का उद्देश्य नहीं है, अपितु हमारे हिन्दू-धर्म का विस्तृत एवं पूर्ण

चित्रण भी प्रयोजित है। महाभारत का शान्तिपर्व जीवन की समस्याओं को सुलझाने का कार्य हजारों वर्षों से करता आ रहा है, इसलिये इस इतिहासग्रन्थ को हम अपना धर्म ग्रन्थ मानते आये है, जिसका पठन-पाठन, श्रवन-मनन सब प्रकार से कल्याणकारी है। भारतीय साहित्य का सर्वश्रेष्ठ ग्रन्थ '**भगवद्गीता**' इसी महाभारत का एक अंश है। इसके अतिरिक्त '**विष्णुसहस्त्रनाम, अनुगीता, भीष्मस्तवराज, गजेन्द्रमोक्ष** जैसे आध्यात्मिक तथा भक्तिपूर्ण ग्रन्थ इसी के अंश हैं। **इन्हीं पांच ग्रन्थों** को '**पंचरत्न**' के नाम से पुकारते हैं। इन्ही गुणों के कारण महाभारत 'पंचम वेद' के नाम से विख्यात है।

भारतीयआख्यान साहित्य का विश्व साहित्य में अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है। आख्यान साहित्य की मौलिकता, रचना, नैपुण्य तथा विश्व व्यापक प्रभाव की दृष्टि से संस्कृत आख्यानों का अनुशीलन परमावश्यक है। इन आख्यानों में शुद्ध काल्पनिक जगत का चित्रण किया गया है। उनमें कहीं कुतूहल, कहीं घटना प्रस्तुत है, कहीं हास्य विनोद है। कहीं गम्भीर उपदेश है और कहीं तो सरस काव्य की मधुर झलक भी है। पाश्चात्य विद्वानों ने भी हमारे आख्यान साहित्य की मौलिकता एवं मनोरंजकता की मुक्तकंठ से प्रशंसा की है। डॉ. कपिल देव द्विवेदी ने सम्पूर्ण संस्कृत आख्यान साहित्य को स्वरूप की दृष्टि से प्रमुखत: चार भागों में विभक्त किया है। 1. अद्भुत कथा 2. लोक कथा 3. कल्पित कथा 4. पशुकथा

आख्यान शब्द की व्युत्पत्ति- आख्यान शब्द ''चक्षिङ्'' धातु से निष्पन्न है। ''चक्षिङ्'' को ''ख्यान्'' आदेश हो जाता है। इस प्रकार ''आ'' उपसर्ग पूर्वक ख्या धातु से ल्युट् (अन्) प्रत्यय के योग से ''आख्यान'' शब्द बनता है। जैन आचार्य हेमचन्द्र ने एक व्यक्ति द्वारा एक समय कही जाने वाली कथा को आख्यान कहा।

आख्यान सञ्ज्ञां तल्लभते यदाभिनयन् पठन्गायन्।
ग्रन्थिकः एकःकथयति गोविन्दवद्अवहिते सदसि।।

(काव्यानुशासन)

वाल्मीकि रामायण में सम्पूर्ण रामकथा को ''आख्यान'' संज्ञा से भी वर्णित किया है -

आश्चर्यमिदमाख्यानां मुनिना संप्रकीर्तितम्।[3]

पाणिनि अष्टाध्यायी में ''आख्यान'' शब्द का दो प्रकार के अर्थों में प्रयोग किया है- 1. उत्तर या प्रतिवचन और 2. इत्थं भूत आख्यान अर्थात् यथार्थ वृत्तान्त, कथा 3. ''आख्यान'' पूर्ववृतोक्ति: आदि वाक्यों में पुरावृत्त कथन, ऐतिहासिक या पौराणिक कथन को ''आख्यान'' की संज्ञा से अभिहित किया है। महाभारत में कथा-तत्व प्रधान ऐतिहासिक घटनाओं को और इतिवृत्तामक वर्णनों को ''आख्यान'' की संज्ञा से तथा उन आख्यानों के अन्तर्गत प्रस्तुत लघु कथाओं को उपाख्यानों के संज्ञा से अभिहित किया गया है।

नलोपाख्यान- राजा नल का उपाख्यान महाभारत

के वन पर्व के अन्तर्गत नलोपाख्यान में अध्याय-52-79 में वर्णित है। निषध देश का राजा नल वीरसेन का पुत्र है। विदर्भ देश का शासक भीम है, उसके कोई सन्तान नहीं है। एक दिन दमनक नामक ब्रह्मर्षि उसके पास आते हैं, राजा, रानी सहित उठकर उनका स्वागत करता है, मुनिवर प्रसन्न होकर उन्हें वरदान देते हैं कि तुम्हे एक कन्या दमयन्ती और दम, दान्त, दमन नाम वाले तीन यशस्वी कुमार प्राप्त होंगे। कुछ समय पश्चात् कन्या का जन्म होता है। राजा ने वरदान में कहे हुए नाम के अनुसार उसका नाम दमयन्ती रखा। वह यौवन के निखार के साथ अति रूपवती हो गयी। दूसरी ओर वीरसेन का पुत्र नल भी युवावस्था को पाकर साक्षात् कामदेव प्रतीत होता था। अनेक पुरुष नल-दमयन्ती की रूप की प्रशंसा एक दूसरे से करते हैं, जिससे दोनों में बिना देखे ही अनुराग उत्पन्न हो जाता है। एक दिन नल अत्यधिक उत्कण्ठा के कारण विनोदार्थ उद्यान में जाता है। वहां स्वच्छन्दता से विहार करते हुए एक सुवर्ण हंस को पकड़ लेता है। हंस स्वयं को फंसा देखकर राजा से कहता है कि हे राजन्! तुम मुझे मत मारो, मैं तुम्हारा प्रिय करूँगा, दमयन्ती के सम्मुख ऐसा वर्णन करूँगा जिससे प्रभावित होकर दमयन्ती तुम्हें छोड़ किसी के साथ विवाह न करेगी। ऐसा कहने पर राजा उसे छोड़ देता है। वहाँ से उड़कर हँस दमयन्ती के पास पहुँचता है। दमयन्ती तथा सखियाँ उसे पकड़ने का प्रयास करती हैं, परन्तु हँस अपनी चतुराई से दमयन्ती को एकान्त में ले जाकर नल के गुणों की, मनुष्यों की भाषा में भूरि-भूरि प्रशंसा करता है -

दमयन्ती तु यं हंसं समुपाधावदन्तिके ।
स मानुषीं गिरं कृत्वा दमयन्तीमथाब्रवीत् ॥
दमयन्ति नलो नाम निषधेषु महीपतिः ।
अश्विनोः सदृशो रूपे न समास्तस्य मानुषाः ॥

दमयन्ती अत्यधिक उत्कण्ठित होकर हँस से नल को अपनी ओर आकर्षित करने के लिए कहती है। दमयन्ती हँस के चले जाने पर अत्यधिक उद्विग्न हो जाती है। दमयन्ती के पिता राजा भीम उसकी दशा को जान लेते हैं और दमयन्ती के विवाह के लिए स्वयंवर की घोषणा करते हैं। सभी देश-विदेश के राजा स्वयंवर में भाग लेने के लिए पहुँचते हैं। इसी अवसर नारद जी भ्रमण करते हुए इन्द्र के पास जाते हैं। इन्द्र, नारद से दमयन्ती के स्वयंवर का समाचार पाकर देवों को साथ में लेकर स्वयंवर स्थल के लिए चल देते हैं। उस ओर नल भी दमयन्ती को पाने की अभिलाषा से विदर्भ देश के लिए चल देता है। रास्ते में देवता कामदेव के समान सुन्दर नल को देखकर विमान से नीचे उतरते हैं और उससे दूत कार्य करने के लिए कहते हैं। नल वचन देता है तथा उनका परिचय एवं कार्य पूछता है। इन्द्र उत्तर देते हैं, कि हम इन्द्र, अग्नि, यम तथा वरुण हैं। तुम हम लोगों में से किसी एक को पति रूप में चुनने के लिए दमयन्ती से कहो। इस कार्य को

सुनकर नल उनसे कहता है कि इस कार्य के लिए आप मुझे न भेजें क्योंकि मै स्वयं ही उससे विवाह का अभिलाषी हूँ। तब देव बोले- तुमने तो हमें वचन दिया है क्या उसे पूरा नहीं करोगे? परवश होकर नल कहता है कि राजप्रसाद बड़े सुरक्षित होते हैं, मै वहां अन्तः पुर में कैसे प्रवेश कर सकूँगा? तब इन्द्र ने राजा नल को तिरस्करणी विद्या प्रदान की। नल देवों की आज्ञानुसार दमयन्ती के पास जाता है। दमयन्ती अपनी सखियों से घिरी हुई बैठी थीं, तभी वहां अतिशय रूप सम्पन्न युवक को देखकर चकित रह जाती है। दमयन्ती के पूँछने पर नल अपना परिचय देता है तथा आने का प्रयोजन भी बतलाता है। दमयन्ती उसकी बात सुनकर कहती है- मैने तो आपको पति रूप में देखा है, आपसे बढ़कर मेरे लिए देवता और कोई नहीं है। मेरा विवाह तो आपसे ही होगा अन्यथा मैं प्राणान्त कर लूँगी। नल ने बहुत समझाया, परन्तु दमयन्ती ने कह दिया कि आप चिन्ता न करें मै आपको देवताओंके मध्य से चुन लूंगी। राजा नल ने देवों के समीप आकर दमयन्ती द्वारा कहे गयेउत्तर को वैसे ही कह दिया। सभी लोग स्वयंवर स्थल में विराजमान हुए। इन्द्र,वरूण, यम तथा अग्नि देवता लोग भी नल के साथ ही उसी के समान शरीरधारण कर आसीन हुए। दमयन्ती स्वयंवर स्थल में नल के समान रूप वाले पांचव्यक्तियों को देख आश्चर्य चकित हो जाती है। दमयन्ती ने मन ही मन देवों की प्रार्थना की। उसकी प्रार्थना से प्रसन्न होकर देवों ने अपना वास्तविक पहचान करा दी और दमयन्ती ने राजा नल को वरमाला पहना दी। विवाह के पश्चात् नल-दमयन्ती परस्पर प्रीति को बढ़ाते हुये रहने लगे। कुछ समय पश्चात् दमयन्ती ने इन्द्रसेन नामक पुत्र तथा इन्द्रसेना नामक पुत्री को जन्म दिया। कलि भी दमयन्ती का प्रेमी था। वह दमयन्ती को पत्नी रूप में पाना चाहता था। नल से विवाह के पश्चात् वह क्रोधित होकर बदला लेना चाहता था, अतः उसने नल के शरीर में प्रवेश किया तथा कलि के साथी द्वापर ने पासों में स्थान लिया। अब कलि ने नल के भाई पुष्कर को द्यूत-क्रीड़ा के लिए प्रेरित किया। कलि के प्रभाव से नल अपने भाई से द्यूत-क्रीड़ा में सब कुछ हार जाता है। नल तथा दमयन्ती घोर वन में भटकते हुए एक दूसरे से अलग हो जाते हैं। दमयन्ती विपदाग्रस्त होकर भटकती हुई अपने माता-पिता के पास पहुँचती है। उधर नल, सोती हुई दमयन्ती के शरीर से आधी साड़ी फाड़ कर दूसरी ओर चला जाता है और अनेक प्रकार की आपत्तियों का सामना करता हुआ अन्त में कर्कोटक नाग द्वारा डस लिया जाता है, अतः उसका रूप विकृत हो जाता है। नाग उसे एक वस्त्र भी देता है। जिससे वह पूर्व शरीर को प्राप्त कर सकेगा। वहां से जाकर राजा नल अयोध्या के राजा ऋतुपर्ण के यहां बाहुक नामक सारथि बनकर नौकरी करने लगता है।

उधर पिता के यहां पहुँचकर दमयन्ती, नल को खोजने के लिए ब्राह्मणों को चारों ओर यह कहकर भेजती है कि जो अपनी पत्नी का आधा वस्त्र चुराकर छिपा फिरता है वह उस पर दया क्यों नहीं करता है, यह कहने पर जो कोई उत्तर दे उसकी सूचना मुझे आकर शीध्र देना।

ब्राह्मणों ने सभी राज्यों में जाकर पता लगाया। एक ब्राह्मण ने अयोध्या के राजा ऋतुपर्ण के यहां जाकर जब दयमन्ती द्वारा बताए कथन को कहा तो सारथी बाहुक ने उत्तर दिया- वह धैर्य रखे। ब्राह्मण ने आकर तुरन्त राजकुमारी को सूचित किया। दमयन्ती ने पुनः स्वयंवर करने का मिथ्या प्रचार करवा दिया जिसेसुनकर अयोध्या का राजा ऋतुपर्ण भी दमयन्ती से विवाह की कामना करता हुआ अपने सारथी बाहुक को साथ लेकर आया। वहाँ कोई आयोजन न देखकर नल, चाल को समझ गया। वह नाग द्वारा दिये गये वस्त्र को पहनकर वास्तविक रूप में हो गया। दमयन्ती ने नल को पहचान लिया। इस प्रकार नल-दमयन्ती का मिलन हुआ।

राजा नल, अश्वविद्या ऋतुपर्ण को सिखा देता है और ऋतुपर्ण उसे द्यूत विद्या सिखा देता है। उधर राजा नल के शरीर में प्रविष्ट हुआ कलि तथा पाँसों में प्रविष्ट हुआ द्वापर भी समय पूरा होने के कारण निकल जाता है। अब राजा नल ने अपने भाई पुष्कर से जुआ खेला और सारा राज्य जीत लिया। राज्य प्राप्त कर लेने पर पुनः नल-दमयन्ती सुखपूर्वक रहने लगे।

---

१. संस्कृत साहित्य का समीक्षात्मक इतिहास डॉ. कपिलदेव द्विवेदी पृ. ५७१
२. अष्टाध्यायी - आचार्य वीरेन्द्र मुनिशास्त्री, पृ. ११६
३. वाल्मीकि रामायण बालकाण्ड ४/२३
४. आसीद् राजा नरो नाम वीरसेनसुतो वली। उपपन्नोगुणैरिष्टैरूपवानभ्वकोविदः।। महाभारत वनपर्व ५३/१
५. दमयन्तींदमंदान्तंदमनं चसुवर्चसम्। उपपन्नान् गुणैः सर्वेभीमान् भीमपराक्रमान।। वहीं ५३/९
६. तयोरदृष्टः कामोऽभूच्छृण्वतोः सततंगुणान्। अन्योन्य प्रति कौन्तेव स व्यवर्धतहृच्छयः।। वहीं ५३/१७
७. महाभारत वनपर्व ५३/२६,२७
८. स समीक्ष्यमहीपारः स्वांसुतांप्राप्तयौवनाम्। अपश्यदात्मनाकार्यंदमयन्त्याः स्वयंवरम् ।। वही ५४/८
९. भोभोनिषधराजेन्द्र नर सत्यवतोभवान्। अस्मांक कुरु साहाय्यं तदूतोभव नरोत्तम।। वहीं ५४/३१
१०. एतदर्थमहं भद्रे प्रेषितः सुरसत्तमैः। एतच्छऽत्वाशुभेबुद्धिंप्रकुरुष्वयथेच्छसि।। वहीं ५४/२५
११. वरयामासचैवेनंपतित्वेवरवर्णैनी। वहीं ५७/२८
१२. जनयामास च ततोदमयन्त्यांमहामनाः। इन्द्रसेनंसुतंचापिड़न्द्रसेनां च कन्यकाम्।। वहीं ५३/४६
१३. क्व नु त्वं कितवच्छित्त्वावस्त्रार्धस्थितोमम। उत्सृज्यविपिनेसुप्तामनुरक्तांप्रियांप्रिय।। वहीं ६९/३७

- शोधछात्र, वी. वी. बी. आई. एस एण्ड आई. एस. पंजाब विश्वविद्यालय पटल,
साधु आश्रम, होशियारपुर।

PEER REVIEWED JOURNAL
ISSN 0505-7523

विश्वज्योति वर्ष: ७३, सं.३-४
जून-जुलाई ,२०२४

आत्मकल्याण के इच्छुक पिता-पुत्र के मध्य संवाद

- उमा रानी

भारतीय संस्कृति, धर्म और दर्शन के मूल स्तम्भों (रामायण एवं महाभारत) पर भारतीय सभ्यता का भव्य प्रासाद निर्मित है। रामायण जहाँ आदिकाव्य है वहीं महाभारत को ऐतिहासिक महाकाव्य होने का गौरव प्राप्त है। जय, भरत और महाभारत- इन तीन स्तरों में विकसित इस महाकाव्य में आदि, सभा, वन, विराट, उद्योग, भीष्म, द्रोण, कर्ण, शल्य, सौप्तिक, स्त्री, शान्ति, अनुशासन, आश्वमेधिक, आश्रमवासिक, मौसल, महाप्रस्थानिक तथा स्वर्गारोहण आदि अट्ठारह पर्व हैं। इसमें वर्णित विविध परमोपयोगी आख्यानों में से महाभारत के शान्तिपर्व के मोक्षधर्म पर्व के २७७वें अध्याय में उपलब्ध आत्मकल्याण के इच्छुक पिता-पुत्र के मध्य संवाद नामक भी एक आख्यान है जिसका वर्णन भीष्म-पितामह द्वारा युधिष्ठिर से किया गया है। युधिष्ठिर द्वारा पूछे जाने पर कि सम्पूर्ण प्राणियों को भयभीत करने वाला यह काल व्यतीत होता जा रहा है। इस अवस्था में अपने कल्याणार्थ मानव को कौन-सा कार्य करना चाहिए, भीष्मपितामह विज्ञपुरूषों द्वारा प्रदत्त पिता-पुत्र संवादरूप एक प्राचीन इतिहास का उदाहरण देते हुए कहते हैं कि- युधिष्ठिर! प्राचीनकाल में एक स्वाध्याय परायण ब्राह्मण के मेधावी नामक एक अति बुद्धिमान् तथा मोक्षधर्म के ज्ञान में कुशल पुत्र उत्पन्न हुआ। वह पिता से बोला- पिता जी! तीव्रगति से बीती जा रही मनुष्यों की आयु विषयक ज्ञान रखने वाले धीरपुरुष को किस धर्म का अनुष्ठान करना चाहिए? एतद्विषयक क्रमशः और यथार्थरूप से आप मुझे समझाइये जिसमें मैं भी उसी धर्म का आचरण कर सकूँ। पिता ने कहा- पुत्र! ब्राह्मण को सर्वप्रथम ब्रह्मचर्याश्रम में रहकर वेदाध्ययन करना चाहिए तदोपरान्त पितरों के उद्धारार्थ गृहस्थाश्रम में प्रवेश करके पुत्रोत्पादन की इच्छा करनी चाहिए। तत्पश्चात् वह विधिपूर्वक यज्ञ सम्पादन करके वानप्रस्थाश्रम में प्रविष्ट होकर मुनिवृत्ति से रहने की इच्छा करे। पुत्र ने पूछा - तात! यह संसार तो किसी के द्वारा अत्यन्त ताड़ित तथा चारों ओर से घिरा हुआ लगता है यहाँ ये अमोघ वस्तुएं हम सब पर टूट पडती हैं। पुत्र बोला पिता जी! मृत्यु समस्त लोक को पीट रही है, बुढ़ापे ने इसे घेर रखा है तथा ये दिन और रात्रियाँ हम सब पर टूट पड़ती हैं। इस विषय को क्यों नहीं समझ रहे हो। मैं इस विषय से अवगत हूँ कि मृत्यु मेरे कहने पर क्षणभर रूक नहीं

सकती, मैं ज्ञानरूपी कवच के बिना ही विचर रहा हूँ। यह सब ज्ञात होने पर भी स्वकल्याणार्थ एक क्षण की भी प्रतीक्षा कैसे करूँ? जब प्रत्येक रात्रि बीतने के उपरान्त हमारी आयु क्षीण होती जा रही है, तब छिछले पानी में निवास करने वाली मछली सदृश कौन सुखी रह सकता है? जैसे विषय-भोगों में संलिप्त मानव को इच्छापूर्ति से पहले ही सहसा मौत आकर दबोच लेती है,[१] अतः कल करणीय कार्य को आज तथा अपराह्ण में किए जाने वाले कार्य को पूर्वाह्ण में ही कर लेना चाहिए क्योंकि मृत्यु इस बात की प्रतीक्षा नहीं करती कि इसका काम पूरा हो गया या नहीं, अतः कल्याणकारी कार्य को आज ही कर डालिए, कौन जानता है मौत कब अपनी ओर खींच लेगी। इसलिए मनुष्य को युवावस्था में ही धर्माचरण करना चाहिए। इससे इस लोक में प्रसन्नता तथा परलोक में अक्षय सुख-प्राप्ति होती है। मोह के आवेश में मानव स्त्री और पुत्रों के लिए अनेक करणीय और अकरणीय काम करता हुआ इनको सन्तुष्ट करता है। पुत्रों और पशुओं से सम्पन्न होने पर जब मानव-मन उन्हीं में आसक्त रहता है, उसी समय मौत उस मनुष्य को उसी प्रकार लेकर चल देती है जिस प्रकार नदी का महान् जलप्रवाह अपने तट पर सोचे हुए व्याघ्र को बहा ले जाता है। मनुष्य भोग सामग्रियों का संग्रह करता हुआ कामनाओं से अतृप्त ही रह जाता है। मानव दुर्बल हो या बलवान्, बुद्धिमान् हो या शूरवीर, मूर्ख हो या विद्वान् मृत्यु उसकी समस्त कामनाओं के पूर्ण होने से पहले ही उसे उठा ले जाती है। पिता जी। जब इस शरीर में मृत्यु, जरा, व्याधि और विविधकारणों से उत्पन्न दुःखों का ताँता बँधा ही रहता है, मानव उनसे अपना पिण्ड नहीं छुड़ा सकता। मानव-जन्म लेते ही उसका अन्त कर डालने के लिए अन्तक उसके पीछे लग जाता है। देहधारी के पास बुढ़ापा भी आता है। समस्त चराचर पदार्थ इन दोनों से बँधे हुए हैं। तब एकमात्र सत्य के बिना कोई भी मनुष्य कभी सामने आती हुई मृत्यु को बलपूर्वक नहीं दबा सकता, अतः हमें सत्य का आश्रय लेना चाहिए क्योंकि सत्य में ही अमृत प्रतिष्ठित है। स्त्री और पुत्रों में आसक्ति मृत्यु का घर ही है। 'यदरण्यम्' इस श्रुति के अनुसार वानप्रस्थ आश्रम देवताओं की गौशाला के समान है।[२]

विषय-भोगों में आसक्ति होना - यह जीव को बाँधने वाली उस रस्सी के समान है जिसे पुण्यात्मा मनुष्य ही काट कर निकल पाते हैं, पापी पुरुष नहीं। जो मानव मन, वाणी तथा कर्म द्वारा किसी भी प्राणी की हिंसा नहीं करता, उसको दूसरे प्राणी भी बन्धन के कष्ट में नहीं डालते, अतः मनुष्य को सत्याचरण करना चाहिए, मानव सत्य की कामना करते हुए सबके प्रति समानभाव रखे, जितेन्द्रिय होकर सत्य द्वारा मृत्यु पर विजय प्राप्त करे। क्योंकि अमृत और मृत्यु दोनों इस शरीर में विद्यमान हैं- मोह से मृत्यु और सत्य से अमृतपद (मोक्ष) की प्राप्ति होती है। इसलिए काम और

क्रोध को त्यागकर अब मैं अहिंसा धर्म पालन की इच्छा करूँगा। सत्याश्रय लेकर कल्याण का भागीदार बनूँगा और अमर की भाँति मृत्यु को दूर हटा दूँगा। सूर्य के उत्तरायण होने पर शान्तिमय यज्ञ में तत्पर, जितेन्द्रिय, ब्रह्मयज्ञ परायण, मननशील बना हुआ, जप-स्वाध्यायरूप वाग्यज्ञ, ध्यानरूप मनोयज्ञ एवं शास्त्रविहित कर्मों का निष्कामभाव से आचरणरूप कर्मयज्ञ का अनुष्ठान करूँगा। मेरे जैसा ज्ञानवान् पुरुष हिंसाप्रधान पशुयज्ञों द्वारा कैसे यजन कर सकता है? अथवा पिशाचवत् विनाशशील क्षत्रिय-यज्ञों के अनुष्ठान में कैसे प्रवृत्त हो सकता है तात! मैं आत्मा से अपने आप में ही उत्पन्न हुआ एवं स्वयं में स्थित हूँ। मेरी कोई सन्तान नहीं है। मैं आत्मयज्ञ का ही यजमान होऊँगा। सन्तान मुझे नहीं तार सकती। जिसकी वाणी और मन सदैव एकाग्र रहते हैं, जिसमें तप, त्याग और योग- इन तीनों का समावेश है वह उनके द्वारा सब कुछ प्राप्त लेता है। जगत् में ब्रह्मविद्या सदृश कोई नेत्र और फल नहीं है। राग के समान दु:ख और त्याग के सदृश कोई सुख नहीं है। ब्रह्म में एकीभाव, समता, सत्य-परायणता, सदाचार निष्ठा, अहिंसा, सरलता एवं सब प्रकार के सकाम कर्मों से निवृति- इनके अतिरिक्त ब्राह्मण का अन्य कोई धर्म नहीं है। पिता जी! जब हम सब की मृत्यु निश्चित है तब इन धन-वैभव, बन्धु-बान्धव तथा स्त्री और पुत्रों से क्या प्रयोजन है? अपने हृदय में स्थित आत्मा की खोज कीजिए। भीष्मपितामह कहते हैं - नरेश्वर ! पुत्र का यह वचन सुनने के पश्चात् पिता ने उसके कथनानुसार सब कुछ किया। यही 'आत्मकल्याण के इच्छुक पिता-पुत्र के मध्य 'संवाद' रूप महाभारतीय आख्यान है, अत: तुम भी सत्य और धर्म में तत्पर होकर उन्हीं का आचरण करो।[3]

---

१. महाभारत, शान्तिपर्व अध्याय २२७, श्लोक १-१२
२. वही, श्लोक १३-२५
३. वही, श्लोक २६-३९

- एसोसिएट प्रोफेसर संस्कृत, सन्त ढाँगू वाले राजकीय महाविद्यालय,
बीटन (जिला ऊना), हि.प्र. । मो. 8595147528

PEER REVIEWED JOURNAL
ISSN 0505-7523

यक्ष और युधिष्ठिर के मध्य संवाद

- ताराचन्द आहूजा

यक्ष और युधिष्ठिर के मध्य जो संवाद हुआ है, वह अत्यंत महत्वपूर्ण है। इस संवाद में यक्ष द्वारा युधिष्ठिर से एक सौ प्रश्न पूछे गये थे जिनका उन्होंने बड़ी बेबाकी से सही उत्तर दिए थे। ये अध्यात्म, दर्शन एवं धर्म से जुड़े प्रश्न ही नहीं हैं वरन् हमारे जीवन से जुड़े प्रश्न है जिनसे अवगत होना हमारे लिए अपेक्षित भी है। जब पांडवजन अपने तेरह-वर्षीय वनवास के दौरान द्वैतवन में विचरण कर रहे थे, तब उन्होंने एक बार प्यास बुझाने के लिए जल की तलाश की। पानी का प्रबंध करने का दायित्व प्रथमत: सहदेव को सौंपा गया। उन्हें पास में एक जलाशय दिखाई दिया जिससे पानी लेने के लिए वे वहाँ पर पहुँचे।

जलाशय के स्वामी अदृश्य यक्ष ने आकाशवाणी के द्वारा उन्हें रोकते हुए पहले कुछ प्रश्नों का उत्तर देने की शर्त रखी। सहदेव उस शर्त और यक्ष को अनदेखा कर जलाशय से पानी लेने लगे। तब यक्ष ने सहदेव को निर्जीव कर दिया। सहदेव के न लौटने पर क्रमश: नकुल, अर्जुन और फिर भीम को युधिष्ठिर द्वारा पानी लाने के लिए भेजा गया। वे सभी उसी जलाशय पर पहुँचे और यक्ष की शर्तों की अवज्ञा करने के कारण अपने प्राणों को खोना पड़ा। अंत में चिंतातुर युधिष्ठिर स्वयं उस जलाशय पर पहुँचे। अदृश्य यक्ष ने प्रकट होकर उन्हें आगाह किया और अपने प्रश्नों के उत्तर देने के लिए कहा। युधिष्ठिर ने धैर्य दिखाया। उन्होंने न केवल यक्ष के सभी प्रश्न ध्यानपूर्वक सुने अपितु उनका तर्कपूर्ण उत्तर भी दिया जिसे सुनकर यक्ष संतुष्ट हो गया। आइये जानिये यज्ञ द्वारा पूछे गये प्रश्न और युधिष्ठिर द्वारा दिए गये उनके सटीक उत्तर-

यक्ष : कौन हूँ मैं ?

युधिष्ठिर : तुम न यह शरीर हो, न इन्द्रियाँ, न मन, न बुद्धि। तुम शुद्ध आत्मा चेतना और सर्वस्पर्शी हो।

यक्ष : जीवन का उद्देश्य क्या है ?

युधिष्ठिर : जीवन का उद्देश्य उसी चेतना को जानना है जो जन्म और मृत्यु के बन्धन से मुक्त है। उसे जानना ही मोक्ष है।

यक्ष : जन्म का कारण क्या है ?

युधिष्ठिर : अतृप्त वासनाएँ, कामनाएँ और कर्मफल जन्म का कारण हैं।

यक्ष : जन्म और मृत्यु के बन्धन से मुक्त कौन है ?

युधिष्ठिर : जिसने स्वयं को यानि आत्मा को जान

लिया, वह जन्म और मृत्यु के बन्धन से मुक्त है।

यक्ष : वासना और जन्म का सम्बन्ध क्या है ?

युधिष्ठिर : जैसी वासनाएँ वैसा जन्म। यदि वासनाएँ पशु जैसी हैं तो पशु योनि में जन्म होगा। यदि वासनाएँ मनुष्य जैसी हों तो मनुष्य योनि में जन्म होगा।

यक्ष : संसार में दु:ख क्यों है ?

युधिष्ठिर : संसार के दु:ख का कारण लोभ, स्वार्थ और भय है।

यक्ष : ईश्वर ने दु:ख की रचना क्यों की ?

युधिष्ठिर : ईश्वर ने संसार की रचना की और मनुष्य ने अपने विचार और कर्मों से दु:ख और सुख की रचना की।

यक्ष : क्या ईश्वर है ? यदि है तो वह स्त्री है या पुरुष ?

युधिष्ठिर : कारण के बिना कार्य नहीं। यह संसार उस कारण के अस्तित्व का प्रमाण है। तुम हो इसलिए वह भी है। उस महान् कारण को ही अध्यात्म में ईश्वर कहा गया है। वह न स्त्री है न पुरुष।

यक्ष : ईश्वर का स्वरूप क्या है ?

युधिष्ठिर : वह सत्-चित्-आनन्द है, वह निराकार ही सभी रूपों में अपने आपको स्वयं को व्यक्त करता है।

यक्ष : वह निराकार स्वयं करता क्या है ?

युधिष्ठिर : वह ईश्वर संसार की रचना, पालन और संहार करता है।

यक्ष : यदि ईश्वर ने संसार की रचना की तो फिर ईश्वर की रचना किसने की ?

युधिष्ठिर : वह अजन्मा, अमृत और अकारण है, स्वयंभू है जिसे किसी ने नहीं बनाया।

यक्ष : भाग्य क्या है ?

युधिष्ठिर : हर क्रिया, हर कार्य का एक परिणाम है। परिणाम अच्छा भी हो सकता है, बुरा भी हो सकता है। यह परिणाम ही भाग्य है। आज का पुरुषार्थ कल का भाग्य है।

यक्ष : सुख और शान्ति का रहस्य क्या है ?

युधिष्ठिर : सत्य, सदाचार, प्रेम और क्षमा सुख का कारण हैं। असत्य, अनाचार, घृणा और क्रोध का त्याग शान्ति का मार्ग है।

यक्ष : चित्त पर नियंत्रण कैसे संभव है ?

युधिष्ठिर : इच्छाएँ, कामनाएँ, वासनाएँ, चित्त में उद्वेग उत्पन्न करती हैं। इच्छाओं पर विजय प्राप्त करके चित्त पर नियंत्रण किया जा सकता है।

यक्ष : सच्चा प्रेम क्या है ?

युधिष्ठिर : स्वयं में सभी को देखना सच्चा प्रेम है। स्वयं को सर्वव्याप्त देखना सच्चा प्रेम है। स्वयं को सभी के साथ एक देखना सच्चा प्रेम है।

यक्ष : मनुष्य सभी से प्रेम क्यों नहीं करता ?

युधिष्ठिर : जो स्वयं को सभी में नहीं देख सकता वह सभी से प्रेम नहीं कर सकता।

यक्ष : आसक्ति क्या है ?

युधिष्ठिर : प्रेम में 'मांग, अपेक्षा, अधिकार' आसक्ति है।

यक्ष : नशा क्या है ?

युधिष्ठिर : आसक्ति ।

यक्ष : मुक्ति क्या है ?

युधिष्ठिर : अनासक्ति ही मुक्ति है।

यक्ष : बुद्धिमान कौन है ?

युधिष्ठिर : जिसके पास विवेक है वह बुद्धिमान है।

यक्ष : नरक क्या है ?

युधिष्ठिर : इन्द्रियों की दासता नरक है।

यक्ष : जागते हुए भी कौन सोया हुआ है ?

युधिष्ठिर : जो आत्मा को नहीं जानता वह जागते हुए भी सोया है।

यक्ष : कमल के पत्ते में पड़े जल की तरह अस्थायी क्या है ?

युधिष्ठिर : यौवन, धन और जीवन।

यक्ष : दुर्भाग्य का कारण क्या है ?

युधिष्ठिर : मद और अहंकार ।

यक्ष : सौभाग्य का कारण क्या है ?

युधिष्ठिर : सत्संग और सबके प्रति मैत्री भाव।

यक्ष : सारे दु:खों का नाश कौन कर सकता है ?

युधिष्ठिर : जो सब कुछ छोड़ने को तैया हो।

यक्ष : मृत्यु पर्यन्त यातना कौन देता है ?

युधिष्ठिर : गुप्त रूप से किया गया अपराध ।

यक्ष : दिन-रात किस बात का विचार करना चाहिए ?

युधिष्ठिर : सांसारिक सुखों की क्षण-भंगुरता का।

यक्ष : संसार को कौन जीतता है ?

युधिष्ठिर : जिसमें सत्य और श्रद्धा है।

यक्ष : भय से मुक्ति कैसे संभव है ?

युधिष्ठिर : वैराग्य से।

यक्ष : मुक्त कौन है ?

युधिष्ठिर : जो अज्ञान से परे है।

यक्ष : अज्ञान क्या है ?

युधिष्ठिर : आत्मज्ञान का अभाव अज्ञान है।

यक्ष : दु:खों से मुक्त कौन है ?

युधिष्ठिर : जो कभी क्रोध नहीं करता।

यक्ष : वह क्या है जो अस्तित्व में है और नहीं भी?

युधिष्ठिर : माया।

यक्ष : माया क्या है ?

युधिष्ठिर : नाम और रूपधारी नाशवान जगत्।

यक्ष : परम सत्य क्या है ?

युधिष्ठिर : ब्रह्म।

यक्ष : सूर्य किसकी आज्ञा से उदय होता है ?

युधिष्ठिर : परमात्मा यानि ब्रह्म की आज्ञा से।

यक्ष : (हिन्दू धर्म में) किसी का ब्राह्मण होना किस बात पर निर्भर करता है ?

युधिष्ठिर : ब्राह्मणत्त्व शील और स्वभाव पर निर्भर करता है, कुल या विद्या पर नहीं।

यक्ष : मनुष्य का साथ कौन देता है ?

युधिष्ठिर : धैर्य ही मनुष्य का साथी होता है।

यक्ष : स्थायीत्व किसे कहते हैं? धैर्य क्या है? स्नान किसे कहते हैं? दान का वास्तविक अर्थ क्या है?

युधिष्ठिर : अपने धर्म में स्थिर रहना ही स्थायीत्व है। अपनी इन्द्रियों पर नियंत्रण रखना ही धैर्य है।

मनोमालिन्य का त्याग करना ही स्नान है और प्राणिमात्र की रक्षा का भाव ही वास्तव में दान है।

यक्ष : कौन सा शास्त्र है जिसका अध्ययन करके मनुष्य बुद्धिमान बनता है?

युधिष्ठिर : कोई भी ऐसा शास्त्र नहीं है। महान लोगों की संगति से ही मनुष्य बुद्धिमान बनता है।

यक्ष : भूमि से भारी चीज क्या है ?

युधिष्ठिर : संतान को कोख में धारण करने वाली माँ, भूमि से भी भारी होती है ?

यक्ष : आकाश से भी ऊँचा कौन है ?

युधिष्ठिर : पिता जो हमारे लिए एक छत्र की भूमिका निभाता है, ऊँचे स्वप्न देखता है।

यक्ष : हवा से भी तेज चलने वाला कौन है ?

युधिष्ठिर : मन जिसकी गति को समझ पाना-नापना संभव नहीं।

यक्ष : घास से भी तुच्छ चीज क्या है ?

युधिष्ठिर : चिंता।

यक्ष : विदेश जाने वाले का साथी कौन होता है?

युधिष्ठिर : विद्या।

यक्ष : घर में रहने वाले का साथी कौन होता है ?

युधिष्ठिर : पत्नी।

यक्ष : मरणोपान्त वृद्ध का मित्र कौन होता है?

युधिष्ठिर : दान, क्योंकि वही मृत्यु के बाद अकेले चलने वाले जीव के साथ-साथ चलता है।

यक्ष : बर्तनों में सबसे बड़ा कौन-सा है ?

युधिष्ठिर : भूमि ही सबसे बड़ा बर्तन है जिसमें सब कुछ समा सकता है।

यक्ष : सुख क्या है ?

युधिष्ठिर : सुख वह चीज है जो शील और सच्चाचरित्रता पर आधारित है।

यक्ष : किसके छूट जाने पर मनुष्य सर्वप्रिय बनता है ?

युधिष्ठिर : अहंभाव के छूट जाने पर मनुष्य सर्वप्रिय बनता है।

यक्ष : किस चीज के खो जाने पर दु:ख होता है ?

युधिष्ठिर : क्रोध।

यक्ष : किस चीज को गबांकर मनुष्य धनी बनता है ?

युधिष्ठिर : लालच को खोकर।

यक्ष : संसार में सबसे बड़े आश्चर्य की बात क्या है?

युधिष्ठिर : हर रोज आंखों के सामने कितने ही प्राणियों की मृत्यु हो जाती है यह देखते हुए भी इंसान अमरता के सपने देखता है। यही महान् आश्चर्य है। घर में किसी प्राणी की मृत्यु होने पर भी परिवार के अन्य लोगों द्वारा शरीर की अनित्यता पर विचार नहीं किया जाता।

यक्ष के सभी प्रश्नों के उत्तर सही दिए युधिष्ठिर महाराज ने। अंत में यक्ष बोला, ''युधिष्ठिर मैं तुम्हारे एक भाई को जीवित करूँगा। तब युधिष्ठिर ने अपने छोटे भाई नकुल को जिन्दा करने के लिए कहा। लेकिन यक्ष हैरान था। उसने कहा- तुमने भीम और अर्जुन जैसे वीरों को जिन्दा करने के बारे में क्यों नहीं सोचा ? युधिष्ठिर बोले -

मनुष्य की रक्षा धर्म से होती है। मेरे पिता की दो पत्नियां थी। कुन्ती का एक पुत्र मैं तो बचा हूँ। मैं चाहता हूँ कि माता माद्री का भी एक पुत्र जीवित रहे। यक्ष उत्तर सुनकर हर्षित हुए और एक अन्य भाई जीवित करने की इच्छा प्रकट की तब युधिष्ठिर ने कहा– यदि आप कृपा करना चाहते हैं तो मेरे सहदेव भाई को जिन्दा कर दें। यक्ष ने इसका कारण पूछा तो युधिष्ठिर ने कहा कि सहदेव भाई भीम और अर्जुन दोनों से छोटा है इसलिए यही धर्मसम्मत विचार मुझे ऐसा कहने के लिए प्रेरित कर रहा है।

युधिष्ठिर महाराज का धर्मसम्मत्त सुविचारित उत्तर सुनकर यक्ष अत्यन्त प्रसन्न हुए और महाभारत की विजय का वरदान देते हुए उनके सभी भाईयों को अन्त में जीवित कर दिया। यह चमत्कार देखकर युधिष्ठिर ने यक्ष से अपना वास्तविक परिचय देने को कहा क्योंकि जीवनदान करने का कार्य तो केवल ईश्वर ही कर सकते हैं। तब यक्ष धर्मराज के रूप में प्रकट हो गये और अपने धाम को लौट गये। धर्म का अंश होने के कारण युधिष्ठिर को भी धर्मराज के नाम से जाना जाता है।

– निदेशक-धार्मिक पुस्तकालय, हंस विहार मंदिर, 4/114, एस.एफ.एस. अग्रवाल फार्म, मानसरोवर, जयपुर – 302020 (राजस्थान)।
मो. 8949344243

शान्तिपर्व में वर्णित रामाख्यान में रामराज्य

- प्रदीप कुमार

वेद विज्ञान के ग्रन्थ हैं।[1] जिससे समस्त भारतीय संस्कृति अनुप्राणित है। वेद के अनन्तर स्मृति ग्रन्थ वेद का स्मरण कराने वाले ग्रन्थ हैं। स्मृति ग्रन्थों के पश्चात् रामायण का समय आता है। रामायण में रघुवंश का वर्णन अर्थात् रघु के आदि से अन्त पर्यन्त समस्त वंश का वर्णन है। राम+आयण अर्थात् राम का आना वा वनवास से पुनः लौटकर अयोध्या आना ही रामायण कहलाता है। रामायण में राम के सम्पूर्ण जीवन का वृतान्त महर्षि वाल्मीकि ने किया है। रामायण के अनन्तर दूसरा आर्ष महाकाव्य महाभारत है जिसमें कौरव और पाण्डवों के युद्ध का वर्णन है। इसी महाभारत में अनेक आख्यान और उपाख्यान वर्णित हैं। जिसमें राम के उत्तम चरित्र भी वर्णित है। यह आख्यान राम आख्यान के नाम से प्रसिद्ध है। महर्षि वेद व्यास राम के चरित्र को अत्यन्त मार्मिक, उद्भावित होकर चरित्रित किया है। राम के सम्पूर्ण जीवन को किंचित् श्लोकों में बहुत ही संक्षेप और वैभवशाली रूप में प्रकट किया है।[2] अयोध्या में जन-जीवन शैली किस प्रकार समृद्ध थी, वह स्पष्ट रूप से मुखरित होती है। महर्षि वाल्मीकि का करुणमय श्लोक जिससे रामायण बीज माना जाता है।[3] उसका उत्तम रूप का अल्पांश महाभारत में प्रकट हुआ। राम ने अनेक वर्षों तक शासन किया। दशरथ नन्दन राम उत्तम पद को प्राप्त हुए थे। क्योंकि वो प्रजा पर वैसी ही कृपा दृष्टि रखते थे जैसे एक पिता सब सन्तानों पर सद्भावना रखते हुए सबको समान स्नेह से रखता हो।[3] राम का अत्यन्त उदात्त चरित्र आज के युग में अनुकरणीय हैं। राम राज्य की संकल्पना यदि की जाए तो उनके राज्य में कोई भी स्त्री अनाथ, विधवा नहीं हुई। श्रीराम चन्द्र जी ने जब तक राज्य किया तब तक वे अपनी प्रजा को सदा सन्तान की भांति पिता होकर के तथा दयालु होकर देखते थे।[4] उनके राज्य में समय पर मेघ वर्षा किया करते थे और खेती में फसल आदि उन्नता हुआ करती थी।

कहने का अभिप्राय यह है कि न तो मेघ अति वृष्टि करता था, और न ही आकाल होता था अपितु उनके शासन काल में सर्वदा सुकाल ही रहता था।[5] रामराज्य में कोई प्राणी जल में डूब कर नहीं मरते थे न हि आग अनुचित रूप से किसी को भस्मीभूत करती थी। यहां तक कि उनके शासन काल में किसी को किसी प्रकार के रोग का भय भी नहीं होता था।[6] अतः आज भी आधुनिक युग में रामराज्य की संकल्पना करने का भरसक प्रयत्न

लोगों के द्वारा किया जाता है क्योंकि महाभारतकार मे महार्षि वेदव्यास ने राम के तत्कालीन समाज का वर्णन स्वकीय ग्रन्थ तथा आर्ष महाकाव्य महाभारत में सत्य रूप में ही किया है। क्योंकि भारतीय संस्कृति को उच्चतम शिखर पर ले जाने वाली आयुर्वेद की परिपाटी का प्रयोग कर राम के शासन काल में पुरुष और स्त्रियां सहस्र वर्षों तक जीवित रहा करते थे। यही नहीं इस महत् संस्कृति के आश्रय के प्रभाव से समस्त जनजीवन के समस्त मनोरथ पूर्ण भी हुआ करते थे।[७]

उपरोक्त वर्णन से भारत भा ज्ञाने 'रत' रमणे सिद्ध होता है अर्थात् जहां लोग ज्ञान में रमण किया करते थे ऐसा राज्य श्रीराम का हुआ है और भारत के वास्तविक स्वरूप को प्रकट करता है। इतना ही नहीं रामराज्य में स्त्रियाँ परस्पर झगडालु नहीं हुआ करती थी न हि पुरूषों में आपस में किसी प्रकार की कलह हुआ करता था। उनके शासन काल में प्रजा सर्वदा धर्म में तत्पर रहा करती थी।[८] अत: वैदिक शिक्षा के पूर्ण दर्शन राम राज्य में हुआ करते थे क्योंकि स्त्री और पुरूष प्रेम भाव से निवास किया करते थे। धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष में से सर्व प्रथम धर्म का ही चयन करते थे। जिससे सम्पूर्ण भौतिक जीवन व्यतीत कर भारतीय संस्कृति के अन्तिम लक्ष्य मोक्ष तक भी पहुँचते थे राम के राज्य में 'संतोष परमं सुखम्' की भावना उद्घाटित होती है, क्योंकि मनुष्य सन्तुष्ट पूर्ण, काम, निर्भय, स्वाभिमानी और सत्यवादी थे।[९]

प्रजा में नैतिक मूल्यों का अविर्भाव जन्म से ही होता था। जिसके कारण सभी प्रजानन सत्य के मार्ग पर चलते थे। राम राज्य में वृक्षों को भी कोई क्षति नहीं होती थी और बिना विघ्न के सदा फलते फुलते थे।[१०] समस्त गायें बहुत अधिक दुग्ध प्रदान करने वाली थी जिससे यज्ञ की प्रक्रिया निरतंर चलती रहती थी। उस काल में गौघृत से ही यज्ञ आदि हुआ करते थे अर्थात् गाय अत्यधिक दूध देने के कारण दूध दहीघृत-मखन आदि की कमी नहीं थी। 'आयुरेव घृतं' आयु ही घी है, यह शब्द घोष युक्त होता हुआ रामायण काल में ही पूर्णरूपेण प्रदर्शित होता है। महाभारत में महर्षि वेदव्यास के कथनानुसार राम के शासनकाल में गौवें द्रोणे दुग्ध देती थी। बाद में द्रोण शब्द 'देन' रूप में विकृत हुआ जो आजकल हरियाणा में धौण (२० किलो) की मात्रा में माना जाता है अर्थात् गो २० किलो दूध देती थी। यह कहने में अतिशयोक्ति नहीं होगी कि राम के समय गायों के दुग्ध की नदियां बहा करती थी। इतना वैभव रामायण काल के अन्य दृष्टि गोचर नहीं होता है। राम ने १४ वर्ष वनवास के अनन्तर राज्य पाने के बाद १० अश्वमेध यज्ञ किए थे और सभी याचकों को प्रचुर मात्रा में दक्षिणा दी जाती थी।[११] जिससे ज्ञात होता है कि उस काल में भारतवर्ष वैदिक संस्कृति से युक्त होता हुआ अत्यन्त धनाढ्य था अर्थात् कोई भी राम के राज्य में निर्धन होकर के

नहीं रहता था। महर्षि वेदव्यास ने श्रीराम चन्द्र की शारीरिक रचना का वर्णन करते हुए कहते हैं कि वे नवयुवक और श्यामवर्ण वाले थे। उनकी चक्षुओं में किंचित् किंचित् लालिमा शोभा देती थी वे इतने शक्तिशाली थे जैसे युधपति गजराज के समान हो। उनकी बड़ी भुजाएं घुटनों तक लंबी थी। उनका मुख सुंदर और कंधे सिंह के समान थे ऐसे श्री रामचन्द्र ने अयोध्या के अधिपति होकर ११ हजार वर्षों तक शासन किया।[१२] अतः संभव हैं कि ११ हजार वर्षों तक भी राम के शासन को उसी परिपाटी में बाद के राजाओं द्वारा चलाया गया हो। यदि महाभारत में राम आख्यान पर दृष्टि दौड़ाएं तो भारतीय वैदिक जीवन की वास्तविक कड़ियां जुड़कर पाठक के समक्ष उपस्थित होती है। जिसमें आयुर्वेद का महत्त्व, यज्ञ का वैज्ञानिक महत्त्व, गाय के दूध की वैज्ञानिकता और उस समय प्रत्येक पदार्थ विज्ञान की महत्ता परिदर्शित होती है। यदि आधुनिक काल में रामायण कालीन नैतिक मूल्यों का तथा विज्ञान का प्रयोग कर जीवन में उतारा जाए तो यह सुख का आधान कर सकता है। भारतीय जीवन के मुख्य लक्ष्य भौतिक विज्ञान का प्रयोग कर आध्यात्मिक विज्ञान में प्रगति कर लौकिक और पारलौकिक जीवन को समृद्ध और सुखी बनाया जा सकता है।

---

१. मनुस्मृति २.७ स सर्वोऽभिहितो वेदे, सर्वज्ञानमयो हि सः।
२. महाभारत, शान्तिपर्व २८.५१-६१ पर्यन्त श्लोक
३. वही, २८.५१
४. वही, २८.५२
५. वही, २८.५३
६. वही, २८.५४
७. वही, २८.५५
८. वही, २८.५६
९. वही, २८.५७
१०. वही, २८.५८
११. वही, २८.५९
१२. वही, २८.६०

– असिस्टैंट प्रोफेसर, संस्कृत विभाग,
श्रीमती अरुणा आसफ अली स्नात्कोत्तर राजकीय महाविद्यालय, कालका।

PEER REVIEWED JOURNAL
ISSN 0505-7523

विश्वज्योति वर्षः ७३, सं.३-४
जून-जुलाई ,२०२४

समुद्रमंथन का आध्यात्मिक रहस्य

- शैलजा अरोड़ा

समुद्र मंथन की कथा हिन्दु धर्म में एक महान् घटना के रूप में जानी और मानी जाती है। यह एक पौराणिक कथा है जो भागवत महापुराण, विष्णु पुराण तथा अन्य शीर्ष ग्रन्थों में वर्णित है। समुद्र मंथन को सागर मंथन, क्षीर सागर मंथन और अमृत मंथन के नाम से भी जाना जाता है। एक अति दुष्कर कार्य होने के कारण लोग आज भी समुद्र मंथन को एक उपमा के तौर पर असंभव जैसे कार्यों के लिए प्रयोग करते हैं। इस कथा में बताया गया है कि एक बार देवराज इन्द्र ऋषि दुर्वासा के आश्रम पहुँच गये। दुर्वासा ऋषि एक सिद्ध मुनि थे जिनको उनके क्रोधी स्वभाव के लिए जाना जाता है।

इन्द्रदेव के आगमन पर ऋषि दुर्वासा ने देवराज इन्द्र का स्वागत एक विशेष पुष्पमाला पहनाकर किया। इन्द्रदेव ने माला स्वीकार करने के बाद उसे निकाल कर जमीन पर रख दिया। भेंट की गई माला को जमीन पर पड़ा देखकर ऋषि दुर्वासा को क्रोध आ गया क्योंकि यह कोई साधारण माला नहीं बल्कि सौभाग्य की देवी श्री का आशीर्वाद स्वरूप थी। ऐसी माला का तिरस्कार समझ कर ऋषि ने इन्द्र को श्राप दे दिया कि जाओ देवराज तुम्हें जिस शक्ति का अंहकार है तुम्हारे साथ-साथ सभी देवताओं की सारी शक्ति, सामर्थ्य और ऐश्वर्य शून्य हो जाएगा। महर्षि दुर्वासा के इस श्राप के बाद देवता शक्तिहीन हो गये और इन्द्रदेव दानवों से परास्त होते चले गये। इस प्रकार पूरे ब्रह्माण्ड पर असुर राजा बलि का आधिपत्य हो गया। असुरों से युद्ध हारने के बाद इन्द्र समेत सभी देवता भगवान् विष्णुजी के पास गये और उनसे सहायता करने का आग्रह एवं अनुरोध किया।

भगवान् विष्णुजी ने देवताओं को बताया कि क्षीर सागर के तल में अमृत कलश है जिसको पीने से देवताओं की खोई हुई शक्ति पुनः वापस मिल जाएगी और वे अमर हो जाएंगे। लेकिन उसके लिए समुद्र मंथन करना होगा। कमजोर हो चुके देवताओं के पास इतना सामर्थ्य नहीं बचा था कि वे अकेले समुद्र मंथन कर सकें। इसलिए उन्होंने असुरों से इस समुद्र मंथन की प्रक्रिया में भाग लेने हेतु प्रस्ताव रखा और अमृत को देवताओं और असुरों में बराबर बाँटने की बात कही जिस पर दानव राज बलि सहमत हो गये।

समुद्र मंथन एक विशालकाय और दुष्कर कार्य था। अमृतमंथन के लिए मंदार पर्वत की मथनी की तरह का उपयोग किया गया और

विशालकाय पर्वत को समुद्र में मथनी की तरह घुमाने के लिए नागराज वासुकी को रस्सी की तरह उपयोग किया गया। चूँकि राक्षसों पर नागराज वासुकी के विष का प्रभाव नहीं पड़ रहा था इसलिए असुरों को फन की ओर और देवताओं को नागराज वासुकी की पूंछ की तरफ लगाया गया। मंथन शुरू होते ही मंदार पर्वत समुद्र में समाने लगा। इसको रोकने के लिए भगवान् विष्णु को कछुए का रूप धारण करके पर्वत को अपनी पीठ पर धारण करना पड़ा तब जाकर मंथन आरम्भ हो सका।

समुद्र मंथन की प्रक्रिया से कुल चौदह रत्न निकले। मंथन में सबसे पहले हलाहल विष निकलता है जिसे भगवान् शिवजी ने सृष्टि की रक्षा के लिए अपने गले में धारण कर लिया। इसका तात्पर्य है कि मन को मथने अर्थात् आत्मचिंतन करने से सबसे पहले बुरे विचार निकलते हैं जिसे हमें अपने अन्दर नहीं उतरने देना चाहिए। कामधेनु नाम की पवित्र गाय दूसरे नम्बर पर प्राप्त हुई जिसकी विशेष बात यह थी कि ये इनकी इच्छानुसार भोजन की व्यवस्था कर सकती थी जिसे ऋषि-मुनियों को सौंप दिया गया जिससे उन्हें यज्ञ और धर्म के कार्यों में सहायता प्राप्त हो सके। इसका आध्याात्मिक संदेश है कि मन से बुरे विचार निकल जाने पर हमें कामधेनु रूपी पवित्रता प्राप्त होती है।

समुद्र मंथन में तीसरे नम्बर पर उच्चेश्रवा नाम का सात मुखी घोड़ा निकला जो मन की गति से चलता था जिसको दानव राजा बलि ने अपने पास रख लिया। इसका आध्यात्मिक सन्देश बड़ा, महत्त्वपूर्ण है। भगवद्गीता के अनुसार मन के सात शत्रु हैं- काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह, मात्सर्य और भय। जब मन भटकता है तो बुराई की तरफ ही जाता है। चौथे नम्बर पर ऐरावत हाथी प्रकट होता है जिसको देवराज इन्द्र ने अपने पास रख लिया। ऐरावत ऐश्वर्य और शुद्ध बुद्धि का प्रतीक है। इसका आध्यात्मिक संदेश है कि जब मन बुराइयों से दूर होगा और हमारी बुद्धि में शुद्धता आएगी तब हमें ऐश्वर्य की प्राप्ति होगी।

समुद्र मंथन में पांचवे नम्बर पर कौस्तुभ मणि निकली थी जिसे भगवान विष्णुजी ने अपने हृदय में धारण किया। ये भक्ति की प्रतीक है। इसका तात्पर्य है कि बुराइयों से दूर जब शुद्ध मन ईश्वर भक्ति में लगने लगता है तब भगवान् उस भक्ति को अपने हृदय में स्थान देते हैं। सागर मंथन में छठवें नम्बर पर कल्पवृक्ष निकला जिसे स्वर्ग लोग में स्थापित किया गया और ये हर इच्छा पूर्ण करने वाला है। इसका आध्यात्मिक संदेश है कि जब भक्त को भगवान् के हृदय में स्थान मिल जाता है तो उसकी हर इच्छा पूर्ण करने की जिम्मेदारी ईश्वर स्वयं लेते हैं।

समुद्र मंथन में सातवें नम्बर पर अप्सरा रंभा निकली जिसे देवताओं ने स्वर्ग में रख लिया। ये कामवासना और लालच का प्रतीक है। इससे

संदेश मिलता है कि भक्ति में लीन व्यक्ति का ध्यान भंग करने के लिए कामेच्छा और लालच जैसे विघ्न आएंगे जिनसे बचना चाहिए। मंथन में आठवें नम्बर पर देवी लक्ष्मी का प्राकट्य हुआ जिसके लिए दानव और देवता सघर्ष करने लगे। लेकिन देवी लक्ष्मी ने विष्णुजी का वरण कर लिया। इसका संदेश यह है कि लक्ष्मी हमेशा कर्मयोगी और शक्तिशाली व्यक्ति के पास विराजमान होती है। इसलिए देवी लक्ष्मी ने भगवान् विष्णु जी को चुना।

सागर मंथन में नौवें नम्बर पर निकली वारूणी। वारूणी यानि मदिरा जिसे दानवों ने ग्रहण किया। इसका आध्यात्मिक सन्देश यह है कि मदिरा यानि नशा एक बुराई है जो बुराई की ओर ले जाता है। इसलिए यह दानवों को प्राप्त हुई। दसवें नम्बर पर सागर संथन से चन्द्रमा की उत्पत्ति हुई जिसको शिवजी ने अपने मस्तक पर धारण किया। इससे हमें आध्यात्मिक संदेश यह मिलता है कि शिवजी योग, ध्यान साधना के लिए जाने जाते हैं और चन्द्रमा शक्ति और शीतलता का प्रतीक है। योग ध्यान से मन बिल्कुल शान्त और शीतल हो जाता है।

समुद्र मुथन में ग्यारहवें नम्बर पर निकला पारिजात वृक्ष जिसकी खास बात यह थी कि इसे छूने मात्र से थकान दूर हो जाती है। इसे स्वर्ग में स्थापित किया गया। इससे सन्देश मिलता है कि जब मन शान्त और शीतल हो तो हमारी थकान भी स्वत: ही दूर हो जाती है। सागर मन्थन में बारहवें नम्बर पर पाञ्चजन्य शंख निकला था जो बड़ा शक्तिशाली था। यह भगवान् विष्णुजी ने अपने पास रख लिया था। इससे यह सन्देश मिलता है कि जब मन बुराइयों से दूर, शान्त शीतल और भक्ति से युक्त हो जाता है तो व्यक्ति की कीर्ति पाञ्चजन्य शंख की तरह दूर तक फैलती है। तेरहवें और चौदहवें नम्बर पर धन्वन्तरी जी अमृत कलश के साथ प्रकट होते हैं। इससे यह संदेश मिलता है कि जब हम संसार की समस्त बुराइयों से दूर शान्त मन से भगवद्भक्ति में ध्यान लगाते हैं तो ईश्वर कृपारूपी अमृत प्राप्त होता है।

इस प्रकार समुद्र मंथन में कुल चौदह रत्न निकले। सबसे अन्त में निकला अमृत कलश जिसके लिए दानवों और देवताओं में पहले पीने के लिए झड़प हो गई। इसके बाद भगवान् विष्णु मोहिनी का रूप धारण करके असुरों के सामने प्रकट हो गये। मोहिनी ने पहले देवताओं को अमृत पिलाना शुरू किया। राहू नाम का एक असुर काफी तीक्ष्ण बुद्धि वाला था। उसने देवरूप धारण कर देवताओं की पंक्ति में बैठकर अमृत का पान करने लगा। इसके पहले कि उसके गले में कुछ बून्दे अमृत की जाती, सूर्य देवता और चन्द्र देवता ने पहचान लिया और भगवान् विष्णु ने सुदर्शन से राहू का सिर धड़ से अलग कर दिया। परन्तु कुछ बून्दे गले में प्रवेश करने से शरीर के दोनों भाग अलग-अलग अमर हो गये जिससे

सिर वाला भाग राहू तथा धड़ वाला भाग केतू नाम से जाना जाता है। तब तक असुरों को पता चल चुका था कि मोहिनी कोई और नहीं बल्कि विष्णु है लेकिन तब तक अमृत सभी देवता पीकर वापस शक्ति प्राप्त कर चुके थे और असुरों को हराकर वापस अपना अस्तित्व हासिल कर लिया।

सनातन धर्म में अनेक कथाएँ प्रचलित हैं ओर इनके पीछे काफी गूढ़ आध्यात्मिक रहस्य छिपे हुए हैं। सागर मंथन का आध्यात्मिक तात्पर्य यह है कि मनुष्य को ईश्वर प्राप्ति के लिए सर्वप्रथम आत्ममंथन प्रक्रिया से गुजरना होता है। और जैसे-जैसे हम अपनी बुराइयों को त्याग करते जाते हैं, हमें ईश्वर की कृपा रूपी अमृत का आस्वादन प्राप्त होता जाता है। समुद्र मंथन की कथा हमें यह सन्देश भी देती है कि जब किसी में अहंकार हावी हो जाता है तो वह अपनी वास्तविक शक्ति खो बैठता है। जैसे इन्द्रदेव ने अहंकार वश महर्षि द्वारा भेंट की गई माला को साधारण समझ कर जमीन पर गिरा दिया और उन्हें अपना वैभव और शक्ति को खोना पड़ा। ऐसी परिस्थिति में आत्ममंथन करके पुन: खोया हुआ अस्तित्व प्राप्त किया जा सकता है। देवताओं और दानवों ने मिलकर सागर मंथन किया, इस कथा का संदेश यह है कि मनुष्य को बुराइयों को भूलकर आत्मचिन्तन और मंथन करके अच्छाइयों को अपनाना चाहिए और अपने परम लक्ष्य को साधना चाहिए।

- निदेशक, धार्मिक पुस्तकालय, हंस विहार मन्दिर, 4/114 एस.एफ.एम., अग्रवाल फार्म, मानसरोवर, जयपुर - 302029 (राजस्थान)

बन्दी और अष्टावक्र का शास्त्रार्थ

– मदन मोहन साह

बन्दी और अष्टावक्र के शास्त्रार्थ के पूर्व बन्दी, अष्टावक्र महर्षि उद्दालक और महर्षि कहोड का परिचय आवश्यक है। मिथिला नरेश राजा जनक के दरबार में अनेक विद्वान् थे उनमें से ही एक प्रसिद्ध विद्वान् का नाम बन्दी था जो अपनी कुशाग्र बुद्धि एवं विद्वता से अनेकानेक विद्वानों को शास्त्रार्थ में पराजित ही नहीं कर चुके थे बल्कि उन सबों को जल में ड़बो चुके थे। कुछ इसी प्रकार की घटना अष्टावक्र के पिता कहोड मुनि के साथ ही हुआ। महर्षि उद्दालक तत्कालीन समय के प्रकाण्ड विद्वान थे। वे अपने शिष्य कहोड की विद्वता से प्रसन्न व प्रभावित हो अपनी पुत्री सुजाता को उन्हें पत्नी रूप में समर्पित कर दिए। कहोड मुनि नियमित रूप से वेद एवं अन्य शास्त्रों का अध्ययन व वेद पाठों का सस्वर वाचन किया करते थे। धर्मपत्नी के रूप में सुजाता को स्वीकारोपान्त कुछ समय बाद सुजाता गर्भवती हो गई। गर्भस्थ बालक अत्यन्त तेजस्वी था। गर्वावस्था में ही वह अपने पिता कहोड मुनि द्वारा किए जाने वाले वेदपाठों को नियमित सुना करता था। एक दिन गर्भस्थ बालक ने गर्भ से ही अपने पिता से जो कहा उसे सर्वलोक पूजित, अमित तेजस्वी, असीम प्रभावशाली, सत्यवती नन्दन महामना महर्षि वेद व्यास ने महाभारत के तीसरे अर्थात् आरण्यक पर्व के अन्तर्गत तीर्थ पर्व के १३२वें अध्याय में निम्न शब्दों में वर्णित किया है–

तस्या गर्भःसमभवदग्निकल्पः
सोऽधीयानं पितरं चाप्युवाच।
सर्वां रात्रिमध्ययनं करोषि
नेदं पितः सम्यगिवोपवर्तते।।

वह गर्भ अग्नि के समान तेजस्वी था। एक दिन स्वाध्याय में लगे हुए अपने पिता कहोड मुनि से उस गर्भस्थ बालक ने कहा– पिताजी! आप रातभर वेदपाठ करते हैं तो भी आपका वह अध्ययन अच्छी प्रकार से शुद्ध उच्चारणपूर्वक नहीं हो पाता।

उपालब्धः शिष्य मध्ये महर्षिः
स तं कोपादुदरस्थं शशाप।
यस्मात् कुक्षौ वर्तमानो ब्रवीषि
तस्माद् वक्रो भवितास्यष्टकृत्वः।।

शिष्यों के बीच में बैठे हुए महर्षि कहोड इस प्रकार उलाहना सुनकर अपमान का अनुभव करते हुए कुपित हो उठे और उस गर्भस्थ बालक को

शाप देते हुए बोले, 'अरे! तू अभी पेट में रहकर ऐसी टेढ़ी बातें बोलता है, अतः तू आठो अंगों से टेढ़ा हो जाएगा।

अपने पिता के शाप से शापित वह तेजस्वी गर्भस्य बालक आठों अंगों से (वक्र) टेढ़े होकर पैदा हुए। इसलिए ही उनका नाम अष्टावक्र हुआ।

महर्षि उद्दालक के प्रिय शिष्य महर्षि कहोड विद्या के धनी तो थे परन्तु अर्थ की दृष्टि से धनहीन थे, तभी तो महर्षि वेद व्यास जी ने उनकी ही पत्नी सुजाता के शब्दों को निम्न रूपेण चित्रित किया है–

कथं करिष्याम्यधुना महर्षे
मासश्चायं दशमो वर्तते मे।
नैवास्ति ते वसु किंचित्
प्रजाता येन तामापदं बिस्तरेयम्।।

महर्षे! यह मेरे गर्भ का दसवाँ महीना चल रहा है। मैं धनहीनं नारी खर्च को कैसे व्यवस्था करूंगी? आपके पास थोड़ा सा भी धन नहीं है जिससे मैं प्रसवकाल के इस संकट से पार हो सकूँ।

उक्तस्त्वेवं भार्यया वै कहोडो
वित्तस्यार्थे जनकमथाभ्यगच्छत्।
स वै तदा वादविदा निगृह्य
निमज्जितो बन्दिनेहाप्सु विप्रः।।

पत्नी के ऐसा कहने पर कहोड मुनि धन के लिए राजा जनक के दरबार में गये। उस समय शास्त्रार्थी पण्डित बन्दी ने उन ब्रह्मर्षि को विवाद में हराकर जल में डबो दिया।

जब महर्षि उद्दालक को यह समाचार मिला तो उन्होंने अपनी पुत्री सुजाता से सब कुछ बताते हुए कहा, "बेटी! अपने बच्चे से इस वृत्तान्त को सदा ही गुप्त रखना। फलस्वरूप अष्टावक्र जो अपने जन्म के पूर्व ही पिता को खो चुका था अपने नाना महर्षि उद्दालक को ही अपना पिता मानते थे और महर्षि उद्दालक के पुत्र श्वेतकेतु को अपना भ्राता जो कि वास्तव में अष्टावक्र के मामा थे। अष्टावक्र और श्वेतकेतु दोनों ही भानजा और मामा समउम्र थे। अष्टावक्र अपने नाना को पिता समझ गोद में बैठा करते थे, परन्तु बारह वर्ष की अवस्था हो चुकी थी। एक दिन अष्टावक्र अपने नाना की गोद में बैठे थे, उसी समय श्वेतकेतु वहाँ आए और रोते हुए अष्टावक्र का हाथ पकड़कर उन्हें दूर खींच ले गए और कहा– यह तेरे बाप की गोदी नहीं है। अष्टावक्र का कोमल हृदय काँच की भांति क्षणभर में चकनाचूर हो गया। अत्यन्त आहत हो उन्होंने घर में माता के पास जाकर पूछा– माँ! मेरे पिता जी कहाँ हैं? माता सुजाता भी अपने पुत्र की आहत दशा से द्रवित हो गुप्त बात को गुप्त न रख सकी और सारी बातें स्पष्टतः बता दी। श्वेतकेतु द्वारा अपमान जनक बात सुनने के बाद पिता के बारे में जानने की तीव्र जिज्ञासा अवश्य उत्पन्न हुई परन्तु श्वेतकेतु से बदला लेने की भावना नहीं। मन ही मन बन्दी से शास्त्रार्थ की बात को मन में संजोए संयम का सहारा लेते हुए अष्टावक्र ने श्वेतकेतु से कहा– हम दोनों राजा जनक के यज्ञ में चलें। सुना जाता है,

उस यज्ञ में बड़े आश्चर्य की बातें देखने में आती है। हम दोनों वहाँ विद्वान् ब्राह्मणों का शास्त्रार्थ सुनेंगे और वहीं उत्तम पदार्थ भोजन करेंगे।

श्वेतकेतु और अष्टावक्र राजा जनक के दरबार की ओर चल पड़ते हैं। वहाँ उन दोनों को बालक समझ द्वारपालों द्वारा द्वार में प्रवेश की अनुमति नहीं मिलती है क्योंकि राजाज्ञानुसार यज्ञ मंडप में केवल विद्वान ब्राह्मणों के प्रवेश की अनुमति थी। परंतु संयोगवश राजा जनक का भी उसी समय प्रवेश होता है जिसके कारण द्वारपाल उन दोनों बालकों को रास्ते से अलग हटने का निर्देश देता है तथापि प्रवेश के बालकों के दुराग्रह को राजा जनक भाँप जाते हैं और उनकी परीक्षा लेने के लिए जिन प्रश्नों को अष्टावक्र के सामने रखते हैं उसे महर्षि व्यास जी ने १३३वें अध्याय के २४वें से २९वें श्लोकों में उल्लिखित किया है। सभी प्रश्नों का सही और संतोषप्रद उत्तर पाकर वे कहते हैं–

न त्वां मन्ये मानुषं देवसत्वं
न त्वं बाल: स्थविर: सम्मतो मे।
न ते तुल्यो विद्यते वाक्प्रलापे
तस्मात् द्वारं वितराम्येष बन्दी।।

ब्राह्मण! आपकी शक्ति तो देवताओं के समान है, मैं आपको मनुष्य नहीं मानता, आप बालक भी नहीं है। मैं तो आपका वृद्ध ही समझता हूँ। वाद-विवाद करने में आपके समान दूसरा कोई नहीं है। अत: आपको यज्ञ मंडप में जाने के लिए द्वार प्रदान करता हूँ। यही बन्दी हैं।

134वें अध्याय में जब अष्टावक्र और बन्दी आमने-सामने होते हैं तो अष्टवक्र ने कहा- मेरी पूछी हुई बात का उत्तर तुम दो और तुम्हारी बात का उत्तर मैं देता हूँ। इस प्रकार बन्दी द्वारा प्रश्न पूछे जाने के साथ बन्दी और अष्टावक्र का शास्त्रार्थ प्रारम्भ होता है।

एक एवाग्निर्बहुधा समिध्यते
एक: सूर्य: सर्वमिदं विभाति।
एको वीरो देवराजोऽरिहन्ता
यम: पितृणामीश्वरश्चैक एव।।

अष्टावक्र! एक ही अग्नि अनेक प्रकार से प्रकाशित होती है, एक ही सूर्य इस सम्पूर्ण जगत् को प्रकाशित करता है। शत्रुओं का नाश करने वाला देवराज इन्द्र एक ही वीर हैं तथा पितरों का स्वामी यमराज भी एक ही है।

पहले प्रश्न का उत्तर देते हुए अष्टावक्र कहते हैं–

द्वाविन्द्राग्नी चरतो वै सखायौ
द्वौ देवर्षी नारदपर्वतौ च।
द्वावश्विनौ द्वे रथस्यापि चक्रे
भार्यापती द्वौ विहितौ विधात्रा।।

आष्टावक्र बोले- जो दो मित्रों की भांति सदा साथ विचरते हैं, वे इन्द्र और अग्नि दो देवता हैं। परस्पर मित्रभाव रखने वाले नारद और पर्वत भी दो ही हैं। अश्विनी कुमारों की भी संख्या दो ही है, रथ के पहिये भी दो ही होते हैं तथा विधाता ने (एक दूसरे के जीवनसंगी) पति और पत्नी दो ही बनाये हैं।

त्रिः सूयते कर्मणा वै प्रजेयं

त्रयो युक्ता वाजपेयं वहन्ति।

अध्वर्यवस्त्रिसवनानि तन्वते

त्रयो लोकास्त्रीणि ज्योतींषि चाहुः।।

बन्दी ने कहा- यह सम्पूर्ण प्रजा कर्मवश देवता, मनुष्य और तिर्यकरूप तीन प्रकार का जन्म धारण करती है, ऋक, साम और यजु - ये तीन वेद ही परस्पर संयुक्त हो वाजपेय आदि यज्ञ कर्मों का निर्वाह करते हैं। अध्वर्युलोग भी प्रातः सवन, माध्यन्दिनसवन और सायंसवन के भेद से तीन सवनों (यज्ञों) का ही अनुष्ठान करते हैं। (कर्मानुसार प्राप्त होने वाले भोगों के लिये) स्वर्ग, मृत्यु और नरक- ये लोक भी तीन ही बताये गये हैं और मुनियों ने सूर्य, चन्द्र और अग्निरूप तीन ही प्रकार की ज्योतियाँ बतलायी हैं।

अष्टावक्र बोले-

चतुष्टयं ब्राह्मणानां निकेतं

चत्वारो वर्णा यज्ञमिमं वहन्ति।

दिशाश्चतस्रो वर्णचतुष्टयं च

चतुष्पदा गौरपि शश्वदुक्ता।।

ब्राह्मणों के लिये आश्रम चार हैं। वर्ण भी चार ही हैं जो इस यज्ञ का भार वहन करते हैं। मुख्य दिशाएँ भी चार ही हैं। वर्ण भी चार ही हैं तथा गो अर्थात् वाणी भी सदा चार ही चरणों परा, पश्यन्ती, मध्यमा और बैखरी भेद से युक्त बतायी गयी है।

पञ्चाग्नयः पञ्चपदा च पङ्क्तिर्यज्ञा

पञ्चैवाप्यथ पञ्चेन्द्रियाणि।

दृष्टा वेदे पञ्चचूडाप्सराश्च

लोके ख्यातं पञ्चनदं च पुण्यम्।।

बन्दी ने कहा- यज्ञ की अग्नि गार्हपत्य, दक्षिणाग्नि, आहवनीय, सभ्य और आवसश्य के भेद से पाँच प्रकार की कही गयी है। पंक्ति छन्द भी पाँच पादों से ही बनता है, यज्ञ भी पाँच ही हैं- देवयज्ञ, पितृयज्ञ, ऋषियज्ञ, भूतयज्ञ और मनुष्ययज्ञ!) इसी प्रकार इन्द्रियों की संख्या भी पाँच ही है। वेद में पाँच वेणीवाली (पंचचूड़ा) अप्सरा का वर्णन देखा गया है तथा लोक में पांच नदियों से विशिष्ट पुण्यमय पञ्चनद प्रदेश विख्यात है।

अष्टावक्र बोले-

षडाधाने दक्षिणामाहुरेके षट्

चैवेमे ऋतवः कालचक्रम्।

षडिन्द्रियाण्युत षट् कृतिकाश्च

षट् साधस्काः सर्ववेदेषु दृष्टाः।।

कुछ विद्वानों का मत है कि अग्नि की स्थापना के समय दक्षिणा में छः गौ ही देनी चाहिये। ये छः ऋतुएँ ही संवत्सररूप कालचक्र की सिद्धि करती हैं। मन सहित ज्ञानेन्द्रियाँ भी छः ही हैं। कृतिकाओं की संख्या छः ही है तथा सम्पूर्ण वेदों में साद्यस्क नामक यज्ञ भी छः ही देखे गये हैं।

बन्दी ने कहा-

सप्त ग्राम्याः पशवः सप्त वन्या

सप्तच्छन्दांसि क्रतुमेकं वहन्ति।

सप्तर्षयः सप्त चाप्यर्हणानि

सप्ततन्त्री प्रथिता चैव वीणा ।।

ग्राम्य पशु सात हैं (जिनके नाम इस प्रकार हैं)- गाय, भैंस, बकरी, भेंड, घोड़ा, कुत्ता और गदहा। जंगली पशु भी सात हैं (यथा सिंह, बाघ, भेड़िया, हाथी, वानर, भालू और मृग)। गायत्री, उष्णिक, अनुष्टुप, बृहती, पंक्ति, त्रिण्टुप् और जगती-ये-सात ही छन्द एक-एक यज्ञ का निर्वाह करते हैं। सप्तर्षि नाम से प्रसिद्ध ऋषियों की संख्या भी सात ही है (यथा-मरीचि, अत्रि, पुलह, पुलस्त्य, क्रतु, अंगिरा और वसिष्ठ), पूजन के संक्षिप्त उपचार भी सात हैं (यथा-गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, नैवेध, आचमन और ताम्बूल) तथा वीणा के भी सात ही तार विख्यात हैं।

अष्टावक्र बोले-

अष्टौ शाणाः शतमानं वहन्ति

तथाष्टपादः शरभः सिंहघाती।

अष्टौ वसूञ्शूश्रुम देवतासु

यूपाश्चष्टास्रिर्विहितः सर्वयज्ञे ।।

तराजू में लगी हुई सनकी डोरियाँ भी आठ ही होती हैं जो सैकड़ों का मान (तौक) करती हैं। सिंह को मार गिराने शरभ के आठ ही पैर होते हैं। देवताओं में वसुओं की संख्या भी आठ ही सुनी गयी हैं और सम्पूर्ण यज्ञों में आठ कोण के ही यूप का निर्माण किया जाता है।

बन्दी ने कहा-

नवैवोक्ताः सामिधेन्यः पितृणां

तथा प्राहुर्नवयोगं विसर्गम्।

नवाक्षरा बृहती सम्प्रदिष्टा

नव योगो गणनामेति शश्वत् ।।

पितृयज्ञ में समिधा देकर अग्नि को उदीप्त करने के लिये जो मन्त्र पढ़े जाते हैं उन्हें सामिधेनी ऋचा कहते हैं उनकी संख्या नौ ही बतायी गयी हैं। यह जो नाना प्रकार की सृष्टि दिखायी देती है, इसमें प्रकृति, पुरुष, महत्तत्व, अहंकार तथा पञ्चतन्मात्रा- इन नौ पदार्थों का संयोग कारण है, ऐसा विज्ञ पुरुषों का कथन है। बृहती-छन्द के प्रत्येक चरण में नौ अक्षर बताये गये हैं और एक से लेकर नौ अंकों का योग ही सदा गणना के उपयोग में आता है।

अष्टावक्र ने कहा-

दिशो दशोक्ताः पुरुषस्य

लोके सहस्रमाहुर्दशपूर्णं शतानि।

दशैव मासान् बिभ्रति गर्भवत्यो

दशैरका दश दाशा दशार्हाः ।।

पुरुष के लिये संसार में दस दिशाएँ बतायी गई हैं। दस सौ मिलकर ही पूरा एक सहस्र कहा जाता है, गर्भवती स्त्रियाँ दस मासतक ही गर्भ धारण करती हैं, निन्दक भी दस ही होते हैं, शरीर की अवस्थाएँ भी दस हैं तथा पूजनीय पुरुष भी दस ही बताये गये हैं।

बन्दी ने कहा-

एकादशैकादशिनः पशूनामेकादशैवात्र

भवन्ति भूपाः।

एकादश प्राणभृतां विकारा

एकादशोक्ता दिवि देवेषु रुद्राः ।।

प्राणधारी पशुओं (जीवों) के लिये ग्यारह

विषय हैं। उन्हें प्रकाशित करने वाली इन्द्रियाँ भी ग्यारह ही हैं, यज्ञ, याग आदि में भूप भी ग्यारह ही होते हैं, प्राणियों के विकार भी ग्यारह हैं तथा स्वर्गीय देवताओं में जो रूद्र कहलाते हैं, उनकी संख्या भी ग्यारह ही है।

अष्टावक्र बोले–

संवत्सरं द्वादशमासमाहुर्जगत्याः
पादो द्वादशैवाक्षराणि।
द्वादशाहः प्राकृतो यज्ञ उक्तो
द्वादशादित्यान् कथयन्तीह धीराः।।

एक संवत्सर में बारह महीने बताये गये हैं, जगती छन्द का प्रत्येक पाद बारह अक्षरों का होता है, प्राकृत यज्ञ बारह दिनों का माना गया है, ज्ञानी पुरुष यहाँ बारह आदित्यों का वर्णन करते हैं।

बन्दी ने कहा–

त्रयोदशी तिथिरुक्ता प्रशस्ता
त्रयोदशद्वीपवती मही च।

त्रयोदशी तिथि उत्तम बतायी गयी है तथा यह पृथ्वी तेरह द्वीपों से युक्त है।

शास्त्रार्थ की अविरल बहती धारा बन्दी के द्वारा कथित 20वें श्लोक की प्रथम पंक्ति के साथ अवरुद्ध हो गयी क्योंकि बन्दी उस श्लोक को पूरा नहीं कर पाए, जिसकी पूर्ति अष्टावक्र ने करके बन्दी को शास्त्रार्थ में पराजित कर दिया।

अष्टावक्र ने श्लोक की दूसरी पंक्ति में कहा–

त्रयोदशाहानि ससार केशी
त्रयोदशादीन्यतिच्छन्दांसि चाहुः।

केशी नामक दानव ने भगवान् विष्णु के साथ तेरह दिनों तक युद्ध किया था। वेद में जो अतिशब्द–विशिष्ट छन्द बताये गये हैं, उनका एक–एक पाद तेरह आदि का एक पाद तेरह अक्षरों का, अतिशक्करी का एक पाद पन्द्रह अक्षरों का, अत्यष्टि का प्रत्येक पाद सत्रह अक्षरों का तथा अतिधृति का हर एक पाद उन्नीस अक्षरों का होता है।

बन्दी चुप हो गए थे परंतु अष्टावक्र बोलते रहे। सब ब्राह्मण हाथ जोड़े हुए श्रद्धापूर्वक अष्टावक्र के समीप आए और उनका आदर–सत्कार पूर्वक पूजन किया। इस प्रकार शास्त्रार्थ में अष्टावक्र ने सहजता से बन्दी को पराजित कर अपने पिता करोड का ही नहीं अपितु अन्य अनेक विद्वान् ब्राह्मणों का उद्धार किया जो पराजित हो बन्दी द्वारा जल में डुबो दिए गए थे।

लोमश जी कहते हैं–

ततस्ते पूजिता विप्रा वरुणेन महात्मना।
उदतिष्ठंस्ततः सर्वे जनकस्य समीपतः।।

तदनन्तर महामना वरूण द्वारा पूजित हुए वे समस्त ब्राह्मण जो बन्दी द्वारा जल में ड़बोये गये थे सहसा राजा जनक के समीप प्रकट हो गये।

उस समय कहोड मुनि ने कहा–

इत्यर्थमिच्छन्ति सुताञ्जना जनक कर्मणा।
यदहं नाशकं कर्तुं तत् पुत्रः कृतवान् मम।।

जनकराज! लोग इसीलिये अच्छे कर्मों द्वारा पुत्र पाने की इच्छा रखते हैं, क्योंकि जो कार्य मैं नहीं कर सका, उसे मेरे पुत्र ने कर दिखाया।)

बन्दी और अष्टावक्र का यह शास्त्रार्थ भौतिकता की अंधी दौड़ का प्रतिभागी वने व

असीम भौतिक संसाधनों के संग्रह की आकांक्षा रखने वाले आज के समाज को अनेकानेक संदेश देता है।

सबसे पहला संदेश तो यह है कि विद्वता पर किसी व्यक्ति विशेष का एकाधिकार नहीं। इसे किसी परिधि में संकुचित कर अपने को सर्वश्रेष्ठ मान लेना कुएं के मेढ़क जैसा है और यही मान्यता किसी के लिए भी अधोगति का कारण बनता है। आज समाज में विद्या के दो-चार अक्षरों को जान अभिमानी बने व्यक्तियों की कमी नहीं। पूर्व में एक से एक बढ़कर विद्वान् जन हुए हैं जिनके आचार-विचार सर्वदा ही अनुकरणीय रहा है। मनुष्य को सर्वदा ही अपने जीवन को सार्थक बनाने का प्रयास करते हुए विकासोन्मुख होना चाहिए।

दूसरा संदेश यह है कि गर्भावस्था में ही पिता के शाप से शापित अष्टावक्र को जब समय आने पर अपने पिता की दशा का पता चलता है कि वे राजा जनक के दरवार के प्रसिद्ध विद्वान् बन्दी द्वारा शास्त्रार्थ में पराजित होने के कारण जल में डुबो दिए गए हैं तो जिस पिता को अष्टावक्र ने देखा तक भी नहीं था, तथापि शीघ्रतिशीघ्र उनके उद्धार हेतु प्रयत्नशील हो जाते हैं, जो अपने आप में एक अद्वितीय उदाहरण है। येन-केन प्रकारेण वे राजा जनक के यज्ञ मंडप में प्रवेश या बन्दी को शास्त्रार्थ में हराकर अपने पिता का उद्धार करते हैं जबकि आज के समाज में पिता द्वारा पालित-पोषित पुत्र द्वारा ही अभिभावकगण उपेक्षित व तिरस्कृत हो वृद्धाश्रम का आश्रय ले जीवन-यापन के लिए विवश हो रहे हैं। अपने अंगों की वक्रता का रहस्य जानने के वावजूद अष्टावक्र के मन में पिता के प्रति प्रतिशोध की भावना उत्पन्न होने की बजाय उनके उद्धार की भावना का अथक व सफल-प्रथास उनकी कर्त्तव्य निष्ठा अर्थात् उनके धार्मिक आचार-विचार का परिचायक है जो आज की पीढ़ी के लिए अनुकरणीय है। क्योंकि पिता तो सदा ही पूजनीय हैं और पिता के ऋण से कभी अऋण नहीं हुआ जा सकता। परंतु उनके-प्रति निभाए जाने वाले कर्त्तव्यों को निष्ठा एवं श्रद्धापूर्वक किया तो जा ही सकता है। तभी तो संस्कृत का एक श्लोक प्रासंगिक है-

अभिवादनशीलस्य नित्यं वृद्धोप सेविनः।
चत्वारि तस्य वर्धन्ते आयुर्विद्यायशोबलम्।।

तीसरा महत्त्वपूर्ण संदेश यह है कि शारीरिक शक्ति की अपेक्षा मानसिक शक्ति में अधिक बल है तभी तो आठों अंगों से वक्र होते हुए भी अपनी मानसिक शक्ति के बल से विद्वान बन्दी को जो कई विद्वानों को पराजित कर जल में डुबो चुके थे शास्त्रार्थ में सहजता से पराजित कर, पराजित हुए एवं जल में ड़बोए गए अन्य विद्वानों का भी उद्धार किया। मानसिक व आध्यात्मिक शक्ति की महत्ता के परिणाम स्वरूप सृष्टि का सर्वोत्तम प्राणी मनुष्य अन्य-प्राणियों से शारीरिक बल से कमजोर होते हुए भी सभी क्षेत्रों में सफलता के सर्वोच्च शिखर का अधिकारी बन गया है। मनुष्य जीवन ही वह जीवन है जिसमें अपने पुरुषार्थ के बल

अनेकानेक लोगों ने जन्म-मृत्यु के बंधन को काटकर मोक्ष को प्राप्त किया है।

चौथा अति महत्त्वपूर्ण संदेश यह कि बन्दी एवं अष्टावक्र के शास्त्रार्थ के माध्यम से गूढातिगूढ़ तत्त्वों की विवेचना आधुनिक समाज को मानसिक एवं आध्यात्मिक उन्नति की ओर प्रयत्नशील होने हेतु प्रोत्साहित करता है। मनुष्य जब सच्चे मन से प्रगति के पथ पर अग्रसर हो जाता है तो शारीरिक विकलांगता, आर्थिक विपन्नता, सामाजिक व धार्मिक कुरीतियाँ या किसी अन्य प्रकार की बाधाएँ उसके मार्ग को अवरुद्ध नहीं कर पाती। अपने लक्ष्य प्राप्ति के प्रति अडिग, दृढ़निश्चयी व अथक परिश्रमी व्यक्ति ही सफलता के सर्वोच्च शिखर पर आसीन हो, समाज का पथ-प्रदर्शक बनता है। इतिहास के पन्ने इस प्रकार के उदाहरणों से भरे-पड़े हैं।

मानव के चार पुरुषार्थ धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष बतायें गये हैं जिसकी विस्तृत चर्चा महाभारत के विभिन्न पर्वों के विभिन्न अध्यायों में वर्णित हैं जिसके नियमित अध्ययन के साथ ही साथ मनन-चिन्तन की आवश्यकता है। शास्त्रों में जहाँ धर्म को प्रथम स्थान पर रखा गया है वहाँ आज का समाज अर्थ को ही सब कुछ मान रहा है जिसके कारण मानवीय मूल्यों एवं कर्त्तव्य निष्ठा का दिनानुदिन अति तीव्रता से ह्रास दृष्टिगोचर होता है। अर्थोपार्जन हेतु मनुष्य कुछ भी करने को तैयर है क्योंकि उसने अपना लक्ष्य आर्थिक समृद्धि को बना रखा है। समाज स्वयं द्वारा निर्मित कृत्रिम मकड़जाल में फंसा दयनीय दशा का शिकार है जबकि तपस्या और नियम का आश्रय लेकर तीन वर्षों के कालखण्ड में एक लाख श्लोकों में महर्षि वेद व्यास द्वारा रचित महाभारत में सारी समस्याओं का समाधान उपलब्ध है। कोई कारण नहीं कि आज इस अद्वितीय ग्रन्थ के होते हुए मनुष्य भटकाव भरा जीवन यापन करे। महर्षि वेद व्यास जी ने आदि पर्व के अंशावतरण पर्व के 62वें अध्याय के 53वें श्लोक में लिखा है-

धर्मे चार्थे च कामे च मोक्षे च भरतर्षभ।
यदिहास्ति तदन्यत्र यन्नेहास्ति न तत् क्वचित्।।

धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के सम्बन्ध में जो बात इस ग्रन्थ में है, वही अन्यत्र भी है। जो इसमें नहीं है, वह कहीं भी नहीं है।

- फ्लैट नं.- 301, सिद्धि विनायक टावर, ऊर्जा नगर, सगुना-खगौल रोड,
दानापुर, पटना- 801503 (बिहार)

महाभारत का बोधप्रद प्रसंग

गरुड़ का मुक्ति कलश

- सत्यव्रत वर्मा

महर्षि कश्यप की पत्नियाँ कद्रू और विनता सगी बहनें थीं। गृहस्थी की गाड़ी निर्विघ्न चल रही थी। एक बार कश्यप ने पत्नियों के अनन्य प्रेम और सेवाभाव से प्रसन्न होकर उन्हें मनचाहा वरदान मांगने को कहा। कद्रू ने यथामति पति से एक हज़ार तेजस्वी नागपुत्रों का वर मांगा। विनता ने कद्रू के पुत्रों से अधिक बलशाली केवल दो पुत्रों की कामना की। प्राणप्रिय पत्नियों को अभीष्ट वर देकर कश्यप तपश्चर्या के लिये वन में चले गये। ऋषि का वरदान यथा समय फलीभूत हुआ। कद्रू सहस्र पुत्रों की माता बनी। विनता को दो पुत्र प्राप्त हुए। उनमें एक अरुण विकलांग था, जो आज भी एक स्थान पर बैठा हुआ सूर्य का रथ हांक रहा है। सूर्य के समान प्रखर तेजस्वी दूसरा पुत्र गरुड़ भगवान् विष्णु के वाहन के रूप में पूज्य है।

कद्रू और विनता सगी बहनें होने पर भी सौतिया डाह से ग्रस्त थीं। कद्रू के मन में छोटी बहन को जैसे-तैसे अपमानित करने की दुर्भावना पल रही थी। उसने समुद्र-मंथन से प्राप्त दिव्य अश्व उच्चैःश्रवाः के रंग को लेकर शर्त रखी कि जो शर्त हारेगी, उसे दूसरी की दासी बन कर रहना होगा। विनता के अनुसार उच्चैः श्रवाः श्वेत रंग का था, किन्तु कद्रू का आग्रह था कि उसका शरीर तो सफेद है किन्तु पूँछ काली है। कद्रू शर्त जीतने के लिये हर तरह का हथकण्डा अपनाने को तैयार थी। वह किसी भी सूरत में पराजित नहीं होना चाहती थी। अतः उसने अपने नाग पुत्रों की फौज को तत्काल उच्चैः श्रवाः की पूँछ पर बाल बन कर चिपकने की आज्ञा दी। उसके जिन विचार शील पुत्रों ने माता की बेतुकी आज्ञा मानने में ना-नुकुर की, कद्रू ने उन्हें शाप से भस्म कर दिया। बाकी ने माँ के आदेश को आदर पूर्वक शिरोधार्य किया। कद्रू के षड्यन्त्र से उच्चैः श्रवाः की सफेद पूँछ काली बन गयी। वह छद्म शर्त जीत गयी। विनता अपने पुत्र गरुड़ के साथ बड़ी बहन की दासी बन गयी।

अहंकारी विजयी शासक की तरह कद्रू अपनी सौत विनता के साथ बन्धुआ दासी का-सा वर्ताव करने लगी। कद्रू और उसकी सन्तान के हर्ष का ठिकाना न था। विनता और गरुड़ हताश और अपमानित थे। उन्हें कद्रू के उचित-अनुचित सब आदेशों का आँख मूंद कर पालन करना पड़ता था। उन्हें उस लज्जाजनक दासता से छूटने का कोई उपाय नहीं सूझ रहा था। स्वामिनी के

तानाशाही आदेशों की कैद में उनका दम घुट रहा था। उस दिन गरुड़ की सहनशीलता की कड़ी परीक्षा थी, जब कद्रू के घमण्डी पुत्रों ने उसे अपने पंखों पर बैठा कर उन्हें रमणीय द्वीपों की सैर कराने का हुक्म दिया। उसका मन घुटन से भर गया। निराशा के उस कुहासे में गरुड़ ने अबोध बालक की तरह माता विनता से पूछा कि हमें सर्पों की बेहूदी आज्ञाओं का भी पालन क्यों करना पड़ता है। माता ने रुँआसे स्वर में उसे बताया कि इन दुष्ट सर्पों ने मेरी जीती हुई बाजी पलट दी थी, इसलिये मुझे सौत की दासता करनी पड़ रही है। विवश होकर गरुड़ सर्पों को अपने विशाल पखोंपर बैठा कर द्वीप-द्वीप की सैर कराने ले गया। इस अनोखे अनुभव से सर्पों की खुशी का और छोर न रहा। गरुड़ ने अवसर का लाभ उठाते हुए उनसे पूछा कि ऐसी कौन-सी दुर्लभ विद्या या बहुमूल्य वस्तु है, जिसे लेकर तुम हमें दासता से मुक्त कर सकते हो। सर्पों का दो टूक उत्तर था- स्वर्ग लोक से अमृत का कलश लाकर हमें अमृत का पान कराने से ही तुम्हारी मुक्ति हो सकती है। उन्होंने सोचा होगा, न नौ मन तेल होगा, न राधा नाचेगी।

माता के साथ शान्तचित्त से विचार-विमर्श कर गरुड़ ने स्वर्ग की ओर उड़ान भरी। अमृत कलश तक पहुँचना ही मुश्किल था, उसे भूतल पर लाना तो दूर! देवलोक में अमृत घट की सुरक्षा के ऐसे कड़े प्रबन्ध थे कि बड़े-बड़े शूरवीरों के छक्के छूट जाएँ। किन्तु पक्षिराज (गरुड़) के वहाँ पहुँचते ही स्वर्ग में खलबली मच गयी। उन्होंने अपने स्वर्णिम पखों, पंजों और चोंच के कड़े प्रहारों से स्वर्ग को मथ दिया। घट का रक्षक विश्वकर्मा और दूसरे देवता लहू-लुहान होकर धराशायी हो गये। पर इससे गरुड़राज की समस्या का अन्त नहीं हुआ। सुदर्शन चक्र जैसा एक अतीव पैनी धार वाला भयंकर चक्र तेज़ गति से घट के चारों ओर घूम रहा था और उससे बरावर डरावनी लपटें उठ रही थीं। गरुड़ ने बड़ी चतुराई से सूक्ष्म रूप बनाकर किसी तरह चक्र के अरों के बीच से अन्दर प्रवेश किया और घट की सुरक्षा में नियुक्त दो विषधरों को बीच से काट दिया। इन दुस्साध्य बाधाओं को पार कर गरुड़ राज अमृत कलश तक पहुंच पाये। उसे उठा कर उन्होंने तीव्र गति से पृथ्वीलोक की ओर प्रस्थान किया।

इन्द्र को जब पता चला कि गरुड़ स्वर्गलोक के देवों और घट के रक्षकों को तहस-नहस कर अमृत कलश उठा कर उड़ान भर चुके हैं, उसने लपक कर उन पर अपना वज्र छोड़ दिया। गरुड़ ने देवराज की खिल्ली उड़ाते हुए कहा कि तुम्हारा वज्र मेरा बाल भी बांका नहीं कर सकता और तुम एक पंख का भी अन्त नहीं कर सकते। यह सुनकर इन्द्र को दिन में ही तारे दिखने लगे। उसने पैंतरा बदलते हुए गरुड़देव से नम्र निवेदन किया कि यदि तुम्हें इसकी खास जरूरत न हो, मेरा अमृत घट मुझे वापिस कर दो, अन्यथा अमृत का

पान करने वाले भूलोक के वासी हमारे नाक में दम कर देंगे।

गरुड़ ने देवराज को आश्वस्त किया कि मैंने अमृत को झूठा नहीं किया है और न ही किसी दूसरे को इसे झूठा करने दूंगा। किन्तु मुझे अमृत घट की बहुत आवश्यकता है। मैं अपनी माता को कद्रू की दासता से मुक्त कराने के लिये इसे भूलोक में ले जा रहा हूँ। पर, मैं तुम्हारी बात भी पूरी करूँगा। मैं पृथ्वीलोक में इस घट को जहाँ रखूँ, तुम वहां से उठा कर उसे स्वर्गलोक में ला सकते हो।

गरुड़ के पृथ्वी पर पहुँचते ही सर्प अमृत घट को देखकर खुशी से उछल पड़े। वे अमृत पीकर अमर होने की कल्पना मात्र से गद्‌गद हो गये। गरुड़ ने पवित्र क्लश को पवित्र दर्भ (दाभ) घास पर रखा तथा सर्पों से उसे तथा उनकी माता को दासता से मुक्त करने को कहा। सर्पों ने तत्काल उनकी मुक्ति की घोषणा कर दी। गरुड़ ने उन्हें बताया कि स्नान, स्वस्तिवाचन आदि से शुद्ध होकर ही तुम अमृत ग्रहण कर सकोगे। सर्प आनन्द से झूमते हुए स्नान के लिये चले गये। तभी गरुड़ के पूर्व कथन के अनुसार देवराज इन्द्र पृथ्वी पर उतरे और अमृत घट को उठा कर स्वर्ग में ले गये।

सर्प जब स्नानादि से शुद्ध होकर अमृतपान के लिये वापिस आए, उन्हें यह जान कर गहरा दु:ख हुआ कि कलश रहस्यपूर्ण ढंग से गायब हो गया। किसी पर क्रोध करने की बजाय उन्होंने इस चमत्कारी घटना को अपने छल-कपट और दुराचार का फल मान कर सन्तोष कर लिया। गरुड़ ने जहाँ घट रखा था, वहाँ की घास भी पवित्र हो गयी थी। अमृत के लोभी नागों ने उस स्थान को चाट कर कुछ अमृत कण प्राप्त करने की चेष्टा की पर उनके हाथ कुछ न लगा। उल्टे उनकी जीभें बीच से चीर कर दो हो गईं, और वे भुजंग सदा के लिये गरुड़ का भोजन बन कर रह गये।

गरुड़ सच्चे मातृभक्त थे। उन्होंने माता की मुक्ति के लिये स्वर्गलोक तक युद्ध किया और अपनी चतुराई से नागों को अमर होने से वंचित कर जगत् की अपूर्व सेवा की। अत: घनघोर परिश्रम और दृढ़ निश्चय से ही आसुरी शक्तियों को पराजित किया जा सकता है।

- 7/34, पुरानी आबादी, नजदीक नामदेव फलोर मिल,
श्रीगंगानगर - 335001 (राज.)

PEER REVIEWED JOURNAL
ISSN 0505-7523

विश्वज्योति वर्षः ७३, सं.३-४
जून-जुलाई ,२०२४

महाभारत का गहनवनोपख्यान : एक चिन्तन

- राधा देवी

भारतीय वाङ्मय में महर्षि वेदव्यास (कृष्ण द्वैपायन) कृत महाभारत अद्वितीय ग्रन्थ है। इसको पंचम वेद की संज्ञा से अभिहित किया गया है। इसमें एक लाख श्लोक होने के कारण इसे शतसाहस्री भी कहते हैं। इसके विकास के तीन चरण हैं- जय, भारत और महाभारत। जय नामक ग्रन्थ में ८८०० श्लोक थे। इसमें पाण्डवों की विजय का वर्णन किया गया था। दूसरे भारत नामक ग्रन्थ में २४००० श्लोक थे। इसमें आख्यान नहीं थे। इस ग्रन्थ में जब उपाख्यान आदि जोड़े गए तथा इसे व्यापक विश्वकोश का स्वरूप दिया गया, तब इसका नाम 'महाभारत' पड़ा तथा श्लोकों की संख्या एक लाख हो गई। १८ पर्वों में विभक्त महाभारत में मुख्यतः कौरवों और पाण्डवों का संघर्ष वर्णित है, किन्तु प्रांसगिक रूप से प्रतिपादित जीवन-विषयक सभी पक्षों का अद्भुत भण्डार है। कठिनतम विषयों को आख्यानों और उपाख्यानों के माध्यम से अतीव सरल शैली में जन मानस के समक्ष प्रस्तुत किया गया है।

आख्यान- आख्यान शब्द चक्षिङ् धातु से निष्पन्न है। चक्षिङ् को 'ख्यान्' आदेश हो जाता है। इस प्रकार 'आ' उपसर्ग पूर्वक 'ख्या' धातु से ल्युट् (अन) प्रत्यय के योग से आख्यान् शब्द बनता है। चक्षिङ् धातु का व्यक्त वाक् और देखने अर्थ में प्रयोग होता है।

चक्षिङ् व्यक्तायां वाचि अयं दर्शने अपि[1]

विश्वनाथ ने आख्यान को कथा और आख्यायिका के अन्तर्गत माना है।

आख्यानादयश्च कथाख्यायिकयोरेवान्तर्भावान्न पृथगुक्ता[2]

संस्कृत कोश में कथन, उक्ति, कथा, कहानी, कथानक, वृत्तान्त, परावृत्त कथन, गाथा, आख्यायिका, प्रचलित कहावत रूप आख्यान के अनेक सामान्य अर्थ दिए गए।[3]

बाल्मीकि रामायण में सम्पूर्ण रामकथा को आख्यान की संज्ञा दी गई।

एवमेतत् पुरावृत्तम् आख्यानं भद्रमस्तु वः[4]

महाभारत में कथा तत्त्व प्रधान ऐतिहासिक घटनाओं और इतिवृत्तात्मक वर्णनों को आख्यान की संज्ञा से अभिहित किया गया है। महाभारत में अनेक आख्यान तथा उपाख्यान हैं। जो धार्मिक, साहित्यिक, समाजिक, नैतिक, दार्शनिक, आध्यात्मिक तथ्यों को व्यक्त करते हैं। वैसे तो

सम्पूर्ण सहाभारत ही दार्शनिक विचारों से भरा पड़ा है। किन्तु यहाँ गहनवनोपख्यान को शोध पत्र का विषय बनाया गया।

गहनवनोपख्यान :- यह उपाख्यान स्त्री पर्व के अध्याय ५-७ (३ अध्याय) में वर्णित है।

इसमें गहन वन के दृष्टान्त द्वारा संसार के भयंकर स्वरूप तथा वैराग्य प्राप्ति के साधन का वर्णन किया गया है। जब धृतराष्ट्र स्वजनों की मृत्यु से व्यथित होते हैं तब विदुर उनको एक वृतान्त सुनाते हैं।

कश्चिन्महति कान्तारे वर्तमानो द्विजः किल
महद् दुर्गमनुप्राप्तो वनं क्रव्यादसंकुलम्[५]

एक बार किसी दुर्गम विशाल वन में कोई ब्राह्मण यात्रा करते हुए पहुँच जो हिंसक जन्तुओं से भरा हुआ है। उस वन को एक बड़ी भयानक स्त्री ने अपनी दोनों भुजाओं से आवेष्टित कर रखा है, नागों से व्याप्त है। उस वन के भीतर एक कुआँ है जो वृक्ष और लताओं से घिरा हुआ है। वह ब्राह्मण उस कुएं में गिर गया किन्तु लताओं में अटक गया तथा पेड़ की टहनी को पकड़ लिया अतः नीचे नहीं गिरा। उस कुएं के अन्दर एक महानाग बैठा है और कुएं के ऊपर छः मुख और १२ पैरों वाला हाथी बैठा है तथा चूहे उस वृक्ष की टहनियों को कुतर रहे हैं। टहनियों पर मधु के छत्ते लटके हुए हैं जिसका रस वह ब्राह्मण पीता है और तृप्त नहीं होता। उस ब्राह्मण को संकट होने पर भी वैराग्य प्राप्त नहीं हो रहा। उसको हर ओर से भय प्राप्त हो रहा है। इतना सुनकर धृतराष्ट्र, विदुर से पूछते है कि वन कहाँ है उस ब्राह्मण को कैसे मुक्त कराया जाए तब विदुर बताते है कि यह वन संसार ही है।

उच्यते यत् तु कान्तारं महांससार एव सः
वनं दुर्गं हि यच्चैतत् संसार गहनं हि तत्[६]

दार्शनिक-पक्ष- जो ब्राह्मण दुर्गम वन में फंस गया है वह कोई ओर नहीं मनुष्य ही है। गहन वन यह संसार है। कुआँ मानव शरीर है। सर्प और हिंसक जन्तु रोग हैं। भयंकर रूप वाली स्त्री वृद्धावस्था है। सफेद और काले चूहे दिन और रात है। छः मुहँ और १२ पैरों वाला हाथी छः ऋतुएं और १२ महीनों वाला संवत्सर है। कुएँ के भीतर बैठा हुआ महानाग काल है। मधुमक्खियों से निर्मित रस, (मधु), लालसाएँ, तृष्णाएं, कामरस है। जिन लताओं में ब्राह्मण अटक गया था वह आशाएं है तो उसको जीने के लिए प्रेरित करती हैं। यह संसार की स्थिति है जहाँ मनुष्य को सब और से भय सता रहे है किन्तु मनुष्य संसार से विरक्त न होकर इसी में लिप्त रहता है। मनुष्य को जो छः प्रकार के भय व्याप्त है उनका वर्णन इस प्रकार है-

व्यालैश्च वनदुर्गान्ते स्त्रिया च परमोग्रया
कूपाधस्ताच्च नागेन वीनाहे कुञ्जरेण च।।
वृक्षप्रपाताच्च भयं भूषिकेभ्यश्च पञ्चमम्
मधुलोभान्मधुकरैः षष्ठमाहुर्महद् भयम्।[७]

१. सर्पो से भय- वन के दुर्गम प्रदेश के भीतर

सर्पों का भय है। चूंकि वन संसार का प्रतीक है अतएव सर्प रोगों का प्रतीक है।

शारीरा मानसाश्चैव मर्त्यानां ये तु व्याधयः
प्रत्यक्षाश्च परोक्षाश्च ते व्यालाः कथिता बुधैः[८]

मनुष्यों को प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से जो शारीरिक या मानसिक व्याधि है, उनको ही विद्वानों ने सर्प कहा है। शारीरिक रोग सम्भवतः प्रत्यक्ष हो जाते हैं किन्तु मानसिक रोग मुख्यतः अप्रत्यक्ष ही होते हैं। ये ऐसे रोग हैं जिन्हें कोई अन्य व्यक्ति नहीं देख पाता किन्तु जिनको इस रोग ने ग्रसित कर लिया है वो भीतर ही भीतर उस दर्द से पीड़ित हो रहे होते हैं। आधुनिक समय में भी मानसिक तनाव ने मनुष्य को सर्प रूपी रोगों का भय बना रहता है किन्तु वैराग्य नहीं होता।

२. स्त्री से भय- मनुष्यों को स्त्री रूपी वृद्धावस्था का भय सताता है। पाँच ज्ञानेन्द्रियों, कर्मेन्द्रियों, माँस, मज्जा से युक्त शरीर में रहने वाला मनुष्य यदि रोग से पीड़ित ना भी हो किन्तु वृद्धावस्था से ग्रसित होने का भय व्यथित करता है। वृद्धावस्था कष्ट का प्रतीक है क्योंकि इस अवस्था में यह शरीर दुर्बल हो जाता है। भंयकर स्त्री रूपी वृद्धावस्था की कष्टदायक स्थिति का भय भी उसे वैराग्य की ओर उन्मुख नहीं कर सकता।

३. नाग से भय- शरीर रूपी कुएं में बैठा हुआ महानाग ही काल का प्रतीक है।

यस्तत्र वसतेऽधस्तान्महाहिः काल एव सः[९]

मनुष्य को काल से भय सदैव बना रहता है क्योंकि जन्म लेने वाले की मृत्यु निश्चित है।

जातस्य हि ध्रुवो मृत्यु[१०]

शरीर में रहते हुए मनुष्य को अपनी मृत्यु का भय बना रहता है कि एक दिन काल रूपी नाग इसको अवश्य डँस लेगा। रोग या वृद्धावस्था से ग्रसित ना भी हो किन्तु मृत्यु का ग्रास बनना तो अवश्यम्भावी है। फिर भी मनुष्य को वैराग्य नहीं होता अपितु लता रूपी जीने की आशा से बंधा रहता है।

४. हाथी से भय - छः मुखों और १२ पैरों वाला हाथी छः ऋतुओं तथा १२ महीनों वाले संवत्सर का प्रतीक हैं।

षड्वक्त्रः कुञ्जरो राजन् स तु संवत्सरः स्मृतः[११]

समय गतिशील है। किसी भी परिस्थिति में समय रुकता नहीं है। वर्ष, मास, पक्ष, दिन-रात क्रमशः मनुष्य के समय और आयु का शोषण करते ही रहते हैं। जीवन कम होने का भय भी वैराग्य उत्पन्न करने में असमर्थ है।

५. चूहों का भय- चूहों को दिन-रात की संज्ञा दी गई है।

रात्र्यहानि तु तान्याहुर्भूतानां परिचिन्तकाः[१२]

मनुष्य के जीवन को दिन-रात रूपी चूहे कुतर रहे हैं अर्थात् प्रतिदिन आयु क्षीण होती जा रही है।

६. मधुमक्खियों से भय- मधुमक्खियाँ कामनाएं हैं।

ये ते मधुकरास्तत्र कामास्ते परिकीर्तिताः[१३]

जो मधु वह ब्राह्मण पी रहा है, वह मधु कामरस है। जो भी मनुष्य कामरस का सेवन करता है वह अवश्य ही इसमें डूब जाता है। इसका जितना पान किया जाए उतनी ही लालसा और बढ़ जाती है। इसमें डूबा हुआ व्यक्ति अपना जीवन व्यर्थ नष्ट कर देता है। तृष्णा और बढ़ती रहती है। वैराग्य के प्रति जागरूक होना अत्यन्त दुष्कर हो जाता है।

तत्पश्चात् वैराग्य के विषय में बताया गया कि संसार सागर से पार उतरने में सहायक है। विद्वान् पुरुष संसार की गति को जानते हैं इसलिए वैराग्यरूपी शस्त्र से इसके सारे बन्धन को काट देते हैं। तदनन्तर शरीर को रथ, सत्व गुण प्रधान बुद्धि को सारथी इन्द्रियों को घोड़े और मन को लगाम बताया गया।

रथः शरीरं भूतानां सत्त्वमाहुस्तु सारथिम्
इन्द्रियाणि हयानाहुः कर्मबुद्धिस्तु रश्मयः[१४]

जो इन घोड़ो का अनुसरण करता है वह संसार चक्र में फंसा रहता है। जो ब्रह्मज्ञान द्वारा संयमशील होकर बुद्धि द्वारा इन्द्रिय रूपी घोड़ों को वश में करता है वह संसार चक्र में नहीं फँसता।

तस्मात् संयमते बुद्ध्या संयतो न निवर्तते[१५]

इस संसार के भयंकर रूप और कष्टों को देखते हुए मनुष्य को संसार से विरक्त हो परब्रह्म की ओर अपनी चित्तवृत्तियों को लगाना चाहिए।

ज्ञानौषधमवाप्येह दूरपारं महौषधम्
छिन्द्याद् दुःखमहाव्याधिं नरः संयतमानसः।[१६]

परम दुर्लभ ज्ञान रूपी महान् औषधि से दुःख रूपी महान् व्याधि का नाश किया जा सकता है।

उपाख्यान के माध्यम से गहन दार्शनिकता प्रतिपादित की गई है। छः प्रकार के भय द्वारा संसार के भयानक रूप का वर्णन किया गया है। इस संसार को दुःखों का घर बताया गया। यदि इस संसार से वैराग्य हो जाए तो जीवन सफल हो जाता है अन्यथा मनुष्य की दुर्दशा ही होती है। अतः ज्ञान द्वारा वैराग्य प्राप्त कर संसार के रोगों से मुक्ति प्राप्त की जा सकती है।

---

१. अष्टाध्यायी-२/४/५४ २. साहित्य दर्पण ३. संस्कृत-हिन्दी शब्दकोश, वामन शिवराम आप्टे, पृ.१४३
४. बाल्मीकि रामायण-७/१३१/१२२ ५. स्त्री पर्व (महाभारत) ५/३
६. वही-६/५ ७. वही- ५/२२-२३ ८. वही-७/७ ९. वही-६/८
१०. श्रीमदभगवद्गीता २/२७ ११. स्त्री पर्व (महाभारत) ६/१० १२. वही ६/११
१३. वही ६/१२ १४. वही ७/१३ १५. वही ७/१५ १६. वही ७.२१

- 394, आदर्श नगर, गली नं. 2, नजदीक गुरुनानक ऑटो सर्विस, मण्डी खरड़, मोहाली

संस्थान-समाचार

	दान-
Sh. Brij Mohan, Hoshiarpur	1100/-
The President Arya Bhawan, Agra.	1100/-
Chairperson, Jajoo Public Charitable Trust, Amritsar.	5000/-
Mr. Surinder Kumar Sharma, Hamirpur.	800/-
Ms. Bhavika Bhasin, Mumbai.	5100/-
Dr. Renu, Hoshiarpur	1000/-
Sh. Naresh Sud, Hoshiarpur	1500/-
Smt. Prem Bindra, Hoshiarpur	3100/-
Dr. Ashok Kumar Gupta, Hoshiarpur	5100/-

हवन-यज्ञ - विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध संस्थान के कार्य-दिवस का शुभारम्भ प्रतिसप्ताह के प्रथम दिन सत्संग-मन्दिर में हवन-यज्ञ से किया जाता है।

स्मारक-पुण्य-पृष्ठ खण्ड

विश्वज्योति

महाभारत के आख्यान

के

दूसरे भाग

में

वेदादि–धार्मिक ग्रन्थों से स्वाध्याय, मनन तथा जीवन में अपनाने योग्य सद्वचनों को संगृहीत किया गया है।

इस प्रकार के वचनों को निरन्तर पढ़ने, मनन करने एवं तदनुरूप जीवन को चलाने से पाठक अपने जीवन में शान्ति प्राप्त कर सकते हैं।

दानी-सज्जनों की नाम-सूची

	पृष्ठ
डॉ. रेणु, होश्यारपुर	७६
श्रीमती रंजिता शर्मा, यू.एस.ए.	७७
डॉ. प्रदीप कुमार, पटियाला	७८
स. गुरुतृष्ण सिंह, कैनेडा	७९
श्री के. के. शर्मा, होशियारपुर	८०
श्री अजय शर्मा एवं श्रीमती लतिका शर्मा , यू.एस.ए	८१
श्रीमती इन्दुशर्मा, इंग्लैड	८२
श्री कमलकान्त पुरी, होशियारपुर	८३
डॉ सत्यदेव सिंह, मथुरा	८४
सर्वश्री जाजू सार्वजनिक धर्मार्थ न्यास, अमृतसर	८५
डॉ. बी. के कपिला, होशियारपुर	८६
श्री वीरेन्द्र कुमार शर्मा, होशियारपुर	८७
श्रीमती प्रेम बिन्द्रा, होशियारपुर	८८
श्री नरेशचन्द्र सूद, होशियारपुर	८९
श्री राहुल शर्मा, होशियारपुर	९०
श्री सत्येन्द्र भसीन, मुम्बई	९१
डॉ. मंगतराम लाम्बा, सोलन	९२
प्रभुदयाल बुधराम जिंदल चैरिटेबल ट्रस्ट, होशियारपुर	९३
श्रीमती ममता सूरी, जालन्धर	९४
श्री बृज मोहन, होशियारपुर	९५
डॉ. जोगेन्द्रपाल सलोटा, दिल्ली	९६
श्री राजीव शर्मा, होशियारपुर	९७

प्रकृतिमरणं शरीरिणाम्
विकृतिः जीवनमुच्यते बुधैः

जैसे घड़े का मूल रूप तो मिट्टी है। वही घड़े के रूप में दिखाई देती है जो वास्तविक नहीं यह तो मिट्टी से बना हुआ विकार मात्र है। इसी प्रकार मानव का वास्तविक स्वरूप चेतन मात्र है। यह शरीर तो पञ्च भूतों पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश का मिश्रण विकृति मात्र है। अत: अनित्य ही है।

परमादरणीय

स्व. पं. श्री नत्थूराम शास्त्री

[दयानन्द नगर होशियारपुर]

एवं

स्व. पं. श्री विश्वेश्वरनाथ शर्मा वात्स्य

[बाजार वकीलां वाले]

एवं

स्व. प्रिंसीपल शिवनन्दन भारद्वाज [बहादुरपुर गढ़ी]

होशियारपुर

द्वारा समय-समय पर प्रदर्शित उत्तम मार्गदर्शन, आशीर्वचन, कृपा तथा सद्भाव को स्मरण करते हुए इनकी पुण्यस्मृति में

प्रदत्त श्रद्धाञ्जलि

प्रयोजिका :

डॉ. रेणू

प्रोफ़ैसर, लोक प्रशासन विभाग, पंजाबी विश्वविद्यालय,
पटियाला (पंजाब)

पुरतः कृच्छ्र-कालस्य धीमान् जागर्ति पुरुषः।
स कृच्छ्रकालं सम्प्राप्य व्यथां नैवेति कर्हिचित्।।

महा. आ. प. २३३.१

बुद्धिमान् व्यक्ति विपत्ति का आभास होने पर हमेशा सावधान रहता है। इसीलिए जब कभी उसके जीवन में कठिनाई आती है, तब वह किसी भी प्रकार कष्ट का अनुभव नहीं करता। तात्पर्य है कि व्यक्ति को सर्वदा यह मान कर चलना चाहिए कि जीवन में कभी भी कठिन समय आ सकता है।

With best compliments from

SMT. RANJITA SHARMA

&

SH. ANIRUDHA SINGH

U.S.A.

तपः स्वधर्मवर्तित्वं मनसो दमनं दमः।
क्षमा द्वन्द्वसहिष्णुत्वं ह्रीरकार्यनिवर्तनम्।।

महाभा./वन./३२३/८८.

संसार में रहते हुए अपने कर्तव्यकर्म का पालन करना ही सबसे उत्तम तप है। मन को वश में रखना ही दम है अर्थात् इन्द्रिय वशीकरण ही दम है। सर्दी,गर्मी, भूख, प्यास इत्यादि को सहन करना ही क्षमा तथा बुरे- बुरे कर्मों से बचना ही लज्जा है।

With best compliments from

DR. PARDEEP KUMAR

16, Urban Estate, Phase III,

Patiala

अनवरत-परोपकार-व्यग्रीभवद्-
अमलचेतसां महताम्।
आपातकाटवानि स्फुरन्ति
वचनानि भेषजानीव।।

भामिनीविला./१/१२०.

जो व्यक्ति निरन्तर दूसरों की भलाई में लगे रहते हैं तथा जिनका हृदय पवित्र होता है ऐसे महापुरुष यदि किसी समय किसी को कटु वचन भी कह देते हैं, तो उनमें भी भलाई ही छिपी रहती है और वचन सुनने वाले व्यक्ति के जीवन को सुधारने के लिए एक प्रकार से दवाई का ही काम करते हैं अर्थात् उत्तम पुरुषों के वचनों का भाव कभी बुरा नहीं होता।

With best compliments from

S. Gurutrishan Singh

Canada

पुरतः कृच्छ्र-कालस्य धीमान् जागर्ति पुरुषः।
स कृच्छ्रकालं सम्प्राप्य व्यथां नैवेति कर्हिचित्।।

महा. आ. प. २३३.१

बुद्धिमान् व्यक्ति विपत्ति का आभास होने पर हमेशा सावधान रहता है। इसीलिए जब कभी उसके जीवन में कठिनाई आती है, तब वह किसी भी प्रकार कष्ट का अनुभव नहीं करता। तात्पर्य है कि व्यक्ति को सर्वदा यह मान कर चलना चाहिए कि जीवन में कभी भी कठिन समय आ सकता है।

With best compliments from

Dr. K.K. Sharma

President, Suman Memorial Society

38-L, Model Town,
Hoshiarpur-146001

खननात्, मन्थनात् लोके जलाग्निप्रापणं यथा।
तथा पुरुषकारे तु दैवसम्पत् समाहिता।।

महा. आ. प. ९.१

जिस प्रकार भूमि खोदने से जल तथा अरणि (लकड़ी) के मन्थन से अग्नि पैदा हो जाती है, इसी प्रकार पुरुषार्थ करने वाले मनुष्य को दैव (भाग्य) की सहायता स्वत: ही प्राप्त हो जाती है।

स्वर्गीय श्री केवल कृष्ण शर्मा (इंग्लैण्ड)

(4-11-1930 - 6-12-2016)

की पुण्यस्मृति में सादर समर्पित

प्रयोजक-वर्ग:

श्री अजय शर्मा (पुत्र) एवं श्रीमती लतिका शर्मा (पुत्रवधू)

U.S.A

अतिथिपूजितो यस्य गृहस्थस्य तु गच्छति।
नान्यत् तस्मात् परोधर्मः इति प्राहुः मनीषिणः।।

महा. भाग. ६, दानपर्व. २, ७०

मनीषियों एवं ऋषि-मुनियों का मानना एवं धर्मशास्त्र का कथन है कि जिस किसी गृहस्थी के घर में अचानक आया हुआ अतिथि पूजित तथा सन्तुष्ट होकर जाता है, उस गृहस्थी के लिए उस अतिथि की सेवा से बढ़कर और कोई धर्म नहीं है।

स्वर्गीय श्री केवल कृष्ण शर्मा
(इंग्लैण्ड)
(6-12-2016)

स्वर्गीय श्रीमती सत्य शर्मा
(इंग्लैण्ड)
(25-03-2013)

की पुण्यस्मृति में सादर समर्पित

प्रयोजिका:

श्रीमती इन्दुशर्मा (पुत्री)

52 Parsons Road, Slough SL3 7GU England

क्षुत्पिपासाः श्रमार्ताय देशकालगताय च।
सत्कृत्यान्नं प्रदातव्यं यज्ञस्य फलमिच्छता।।

महा. आश्व. ६,९२

सतत चलने वाले लंगर की महिमा के विषय में कहा गया कि - जो व्यक्ति बिना किए भी यज्ञ फल की इच्छा करता है उसको चाहिए कि वह भूख, प्यास या अत्यधिक काम करने के कारण अत्यधिक थके हुए ऐसे भूखे व्यक्ति को देश काल के अनुसार भोजन करावे- अर्थात् भूखे को भोजन प्रदान करना सबसे बड़ा यज्ञ है।

अपने पूज्य पिताजी

स्व. लाला हरबंस लाल जी

अपनी पूज्या माताजी

स्व. श्रीमती लीलावती जी

की पावन स्मृति में
सादर समर्पित

प्रयोजक :

श्रीमती एवं श्री कमलकान्त पुरी

सामने जंगलात ऑफिस, सिविल लाईन,
होशियारपुर (पंजाब)

दैवं पुरुषकारेण न शक्यमपि बाधितुम्।।

महा. भा ६. आश्रमपर्व १०,१८

दैव का विधान अटल होता है। मनुष्य चाहे कुछ भी कर ले, वह दैव के विधान को टाल नहीं सकता।

❋

ठा. स्व. श्री बल्लभ सिंह आर्य (निधन : १२-१२-२००१) **स्व. श्रीमती मथुरी देवी** (निधन : ०७-१२-२००८)

की

पावन स्मृति

में

सादर समर्पित

प्रयोजक

डॉ. सत्यदेव सिंह प्रिंसीपल (रिटायर्ड)

५०७, गोदावरी ब्लाक, अशोका सिटी,

कृष्णा नगर, मथुरा (उ. प्र.)

उद्यमः साहसः धैर्यं बुद्धिः शक्तिः पराक्रमः।
षडेते यत्र वर्तन्ते तत्र देवः सहायकृत्॥

सुभाषित सप्तशती, 679

जो व्यक्ति उद्यमी हो, जिसमें किसी अच्छे कर्म करने का साहस, साथ ही धैर्य हो, इन सब के होने पर वह बुद्धिमान् भी हो, कार्य करने की सामर्थ्य तथा पराक्रमी हो, उसकी परमात्मा सभी प्रकार से सर्वत्र सहायता करता है।

विश्वेश्वरानन्द संस्थान के परमप्रेमी तथा आजीवन-सदस्य

स्व. श्री बृज लाल जी जाजू

एवं उनकी धर्मपत्नी

स्व. श्रीमती मनभरी देवी जाजू

(जिनका दुःखद निधन क्रमशः दिनांक 17-02-1975 तथा 29-11-1987 को हुआ)

तथा उनके सुपुत्र

स्व. श्री विश्वनाथ जाजू

(जिनका दुःखद निधन दिनांक 3-07-1979 को हुआ) तथा उनके सुपौत्र

स्व. श्री दीपक जाजू (सुपुत्र स्व० लीलाधर जाजू)

(जिनका 34 वर्ष की आयु में ही दुःखद निधन जून 1995 में हुआ) एवं

स्व. श्री लीलाधर जाजू

(जिनका दुःखद निधन 1-06-1998 को हुआ)

की पुण्यस्मृति में

उनके सभी प्रेमियों, बन्धु-बान्धवों और विनीत बच्चों की ओर से

प्रयोजकवर्ग :

सर्वश्री जाजू सार्वजनिक धर्मार्थ न्यास

184, वसन्त ऐवेन्यू, अमृतसर।

गृहस्थानां सुश्रोणि, नातिथेर्विद्यते परम्।

महा. दानधर्म २, ४४

व्यक्ति को घर में आए हुए अतिथि का सर्वदा सत्कार करना चाहिए, उसकी सेवा शुश्रुषा तथा इच्छापूर्ति में किसी प्रकार की कमी नहीं रहनी चाहिए। गृहस्थियों के लिए गृहस्थ में रहते हुए अतिथिसेवा से उत्तम अन्य कोई न सेवा है और न अच्छा काम।

स्व. श्री रघुवरदयाल जी कपिला

तथा

स्व. श्री रामशरणदास जी

(निधन २२-१२-१९८८)

अपनी पूज्या माताजी

स्व. श्रीमती रामप्यारी जी

(निधन २३-५-२०१०)

की

पावन स्मृति

में

सादर समर्पित

उनके बच्चों की ओर से

प्रयोजक :

डॉ. बी.के. कपिला (पुत्र) एवं श्रीमती राकेश कपिला (पुत्रवधू)

सुतहरी रोड, होशियारपुर (पंजाब)

एवं सत्सु सदा पश्येत् तत्राप्येषा ध्रुवा स्थितिः।
आचारो धर्ममाचष्टे यस्मिन् शान्ता व्यवस्थिताः।।

महा. ६ अनुगीता पर्व १८, १९

संसार में जो सत्पुरुष हैं उनमें स्वभावतः दान, व्रत, ब्रह्मचर्य, इन्द्रिय, निग्रह, शान्ति, प्राणिमात्र पर दया, चित्त संयम, सौहार्द आदि भाव पाए जाते हैं। ऐसे व्यक्तियों में धर्म अटलरूप से रहता है। सदाचार ही धर्म की पहचान है और शान्तचित्त महात्मा सदाचार में ही स्थित रहते हैं।

पं. दुर्गादास जी
1901-1988

श्रीमती देवकी देवी जी
1905-1972

स्वर्गीय पं. दुर्गादास जी

बैंक मैनेजर, सुप्रसिद्ध स्वतन्त्रता सेनानी, दोआबा गाँधी

एवं धर्मपरायणा पूज्या माता

श्रीमती देवकी देवी जी

की पावन स्मृति में सादर समर्पित

धन्य हैं हम जिन्हें ऐसे माता-पिता मिले।

प्रयोजक वर्ग :

श्री वीरेन्द्र कुमार शर्मा (सुपुत्र) एवं समस्त ऐरी परिवार

मंगल भवन, न्यू सिविल लाईन्ज़, होशियारपुर।

यस्यां यस्यामवल्यायां यद् यत् कर्म करोति य।
तस्यां तस्याभवस्यायां तत्फलं समवाप्नुयात्।।
महाभा. सभापर्व-३२,१३

संसार में जो व्यक्ति जिस-जिस अवस्था में जो जो कर्म करता है। यह निश्चित है कि वह व्यक्ति उसी उसी अवस्था में उसके फल को प्राप्त करता है।

स्व. डॉ. त्रिलोचनसिंह बिन्द्रा

(31-10-1942 - 30-6-2016)

की पुण्यस्मृति में सादर समर्पित

प्रयोजक-वर्ग:

श्रीमती प्रेम बिन्द्रा (पत्नी)

श्री अरविन्द बिन्द्रा (पुत्र), श्रीमती सुप्रिया बिन्द्रा (पुत्रवधु), श्रीमती मोना सिंह (पुत्री),

चि. अभिनव बिन्द्रा व चि. नवांश बिन्द्रा (पौत्र)

बिन्द्रा निवास, सिविल लाइन्ज, होशियारपुर।

कृशाय कृतविद्याय वृत्तिक्षीणाय सीदते।
अपहन्यात् क्षुधां यस्तु न तेन पुरुषः समः।।

महाभा. अनु. ५९, ११

विद्वान् होने पर भी जिसको किसी प्रकार नौकरी नहीं मिली हो या नौकरी मिलकर समाप्त हो गई हो, अथवा अशक्त होने के कारण काम करने में असमर्थ हो, बूढ़ा हो गया हो, ऐसे व्यक्ति की जो सहायता करता है, उसकी आजीविका का प्रबन्ध करता है, उसके बराबर दानी और कोई नहीं, अर्थात् असहाय की सेवा करना महान् धर्म है।

स्वर्गीया श्रीमती श्यामा जी सूद

(14. 7. 1952 – 25. 12. 2011)

की पुण्य स्मृति में सादर समर्पित

प्रयोजक वर्ग :

श्री नरेशचन्द्र सूद (पति), श्री शरत सूद एवं श्री मनु सूद (पुत्र)

ए. बी. सी. हैण्डलूम

कोतवाली बाजार, होशियारपुर।

यद्यपि चन्दनविटपी विधिना फलकुसुमवर्जितो विहितः।
निजवपुषैव परेषां तथापि सन्तापमपहरति॥

काव्यमीमांसा

यद्यपि परमात्मा ने चन्दन के वृक्ष को फूल तथा फलों से रहित रखा है फिर भी वह अपनी सुगन्ध से दूसरों के सन्ताप को दूर करता है अर्थात् जो परोपकारी होते हैं वे धनहीन होने पर भी यथाशक्ति दूसरों की भलाई करते रहते हैं।

हार्दिक शुभ कामनाओं के साथ

प्रयोजक

श्री राहुल शर्मा

निकट देवीचन्द भवन, ऊना रोड,

होशियारपुर।

कोटराग्निः यथा शेषं समूलं पादपं दहेत्।
धर्मार्थौ तु तथा ऽल्पोऽपि राग-द्वेषौ विनाशयेत्।।

महा. वन. प. २, २०

जिस प्रकार किसी सूखे वृक्ष के खोखले में लगी हुई आग वृक्ष को जड़ से सिरे तब जला देती है उसी प्रकार राग अर्थात् आसक्ति और द्वेष मनुष्य के धर्म और अर्थ दोनों को ही नष्ट कर देते हैं। अतः मनुष्य को चाहिए कि वह अनासक्त भास से अपना कर्म करे इसी में शान्ति और सुख है।

अपने पूज्य पिताश्री

स्व. डॉ. मुल्कराज जी भसीन, होशियारपुर

(जन्म : 17. 9. 1904, निधन : 20. 10. 69)

व अपनी पूज्या माताश्री

स्व. श्रीमती सुरेन्द्रा भसीन

(जन्म : 2. 9. 1914, निधन : 2. 5. 1999)

तथा

स्व. श्री सुरेन्द्र कुमार कपूर

(निधन : 17. 12. 1976 को शिकागो में)

स्व. डॉ. परमानंद त्रेहन

(निधन : 13. 8. 08 को पंचकुला में)

उनकी धर्मपत्नी

स्व. श्रीमती चन्द्रप्रभा त्रेहन

(निधन : 4. 7. 12 को पंचकुला में)

व उनके सुपुत्र

स्व. श्री ललित त्रेहन

(जिनका निधन अत्यंत अल्पआयु में 22. 10. 07 को पंचकुला में)

की पुण्य स्मृति में

प्रयोजक वर्ग-:

श्री सत्येन्द्र भसीन (पुत्र), श्रीमती अरुणा कपूर (स्व. श्री सुरेन्द्र कुमार की धर्मपत्नी)

कनिका त्रेहन व परिवारिक सदस्य

6-ए आनन्दधाम, 25, प्रभात कालोनी, शान्ताक्रुज, ईस्ट, मुम्बई-55

दातव्यमिति यद् दानं दीयतेऽनुपकारिणे।
देशे काले च पात्रे च तद् दानं सात्विकं विदुः ॥
श्रीमद्भगवद्गीता, 17.20.

दान देना मेरा कर्तव्य है, इस प्रकार की भावना रखते हुए जो दान देश, काल तथा पात्र का विचार करके दिया जाता है, वह दान सात्विक दान कहलाता है, अर्थात् केवल किसी को कुछ दे देना मात्र दान नहीं, अपितु कहां, कब और किस को दान दिया जाता है, दान देते समय यह विचार जरूर करना चाहिए।

स्व. श्री आर. ए. लाम्बा
जून, 1944
(पिता जी)

स्व. कुमारी प्रोमिला लाम्बा
24-6-2010
(दीदी)

की पावन स्मृति में सादर समर्पित

प्रयोजक वर्ग :

डॉ. मंगतराम लाम्बा एवं वन्दना लाम्बा

लाम्बा सदन, धर्मपुर (जिला सोलन), हि. प्र.

अन्तकाले च मामेव स्मरन्मुक्त्वा कलेवरम् ।
यः प्रयाति स मद्भावं याति नास्त्यत्र संशयः ।।

गीता. ८.५.

जो मनुष्य अन्तकाल में (मृत्यु के समय) मेरे को ही स्मरण करता हुआ शरीर को त्यागता है, वह मेरे साक्षात् स्वरूप को प्राप्त करता है। इसमें कुछ भी संशय नहीं हैं।

पूज्य दादा जी

श्री प्रभुदयाल जी अग्रवाल

(स्वर्गवास 13 अप्रैल, 1975)

एवं

पूज्या दादी जी

श्रीमती अशर्फ़ी देवी

एवं

पूज्य पिताश्री

श्री बुधराम गुप्ता

(स्वर्गवास 9-3-2001)

पूज्या माताश्री

श्रीमती इन्द्रा देवी

(स्वर्गवास 12-10-2009)

की

पावन स्मृति

में

समर्पित

प्रयोजक :

प्रभुदयाल बुधराम जिंदल चैरिटेबल ट्रस्ट (रजि.)

7, न्यू सब्जी मण्डी, फगवाड़ा रोड, होशियारपुर।

यद्यपि चन्दनविटपी विधिना फलकुसुमवर्जितो विहितः।
निजवपुषैव परेषां तथापि सन्तापमपहरति॥

काव्यमीमांसा

यद्यपि परमात्मा ने चन्दन के वृक्ष को फूल तथा फलों से रहित रखा है फिर भी वह अपनी सुगन्ध से दूसरों के सन्ताप को दूर करता है अर्थात् जो परोपकारी होते हैं वे धनहीन होने पर भी यथाशक्ति दूसरों की भलाई करते रहते हैं।

अपने प्रिय भाई

स्व. श्री गौरव भल्ला

(2-12-1972 - 24-7-2021)

की पुण्यस्मृति में सादर समर्पित

प्रयोजकवर्ग :

श्रीमती कृष्णा भल्ला (माता),
श्री गौतम भल्ला/ श्रीमती पूजा भल्ला (भाई/भाभी)
श्रीमती ममता सूरी/ श्री राकेश सूरी (बहन/जीजा)
गिरिजा, असीम, दिव्यांश

150, मास्टर तारा सिंह नगर,जालन्धर

साधूनां चरितं पूतं रचितं पठितं श्रुतम्।
नित्यं करोति कल्याणं श्रद्धालूनां मनस्विनाम्॥

अभि. सं. सुभा. सप्तशती, 594

जो साधु पुरुष होते हैं, उनके पवित्र चरित्र की रचना करने से या सुनने से अथवा पढ़ने मात्र से श्रद्धालुओं एवं मनस्वियों का कल्याण होता है, अर्थात् सत्साहित्य का पढ़ना, सुनना या रचना, जीवन को सफल बनाता है।

हार्दिक शुभ कामनाओं के सहितः

श्री बृज मोहन

मकान नं. 1/50, गली नं. 4,
शक्ति नगर, धोबीघाट
होशियारपुर

दमेन सदृशं धर्मं नान्यं लोकेषु शुश्रुम्।
दमो हि परमो लोके प्रशस्तः सर्वधर्मिणाम्।।

महाभा./शान्ति/१६०/१०

संसार में सुखी रहने का एकमात्र उपाय है आत्मसंयम। यद्यपि व्रत-नियम आदि भी सुखी जीवन के लिए उपयोगी हैं किन्तु जो व्रत या नियमों का पालन करते हैं, उनके लिए भी आत्मसंयम परमोपयोगी है।

हार्दिक शुभ कामनाओं के सहितः

डॉ. जोगेन्द्रपाल सलोटा

दिलशाद गार्डन

दिल्ली

ईश्वरा भूरिदानेन यल्लभन्ते फलं किल।
दरिद्रस्तत्तु काकिण्या प्राप्नुयादिति नः श्रुतिः।।

पञ्च./मित्रसं./३३

संसार में धनिक तथा निर्धन अपनी अपनी शक्ति के अनुसार दान करके पुण्य प्राप्त करते हैं, किन्तु निर्धन व्यक्ति उसकी तुलना में बहुत कम दान करते हैं पर जब तुलना की जाती है तो निर्धन का कौड़ी भर किया हुआ दान भी फलदायक होता है।

अपने पूज्य दादा जी

स्व. पं. बाबू राम जी

(सेवानिवृत्त मुख्याध्यापक)

(जो दृढ़ आर्यसमाजी, परिश्रमी तथा काम करने में विश्वास रखने वाले थे।)

तथा

अपने पूज्य पिताश्री

स्व. श्री ज्ञानस्वरूप जी शर्मा

(निधन १४-९-१९९० को हुआ)

की

पावनस्मृति में

सादर समर्पित

प्रयोजक :

श्री राजीव शर्मा

गली नं. १२, कृष्णा नगर, होशियारपुर।

संस्थान के जीर्णोद्धार के निमित्त धन की अपील

उत्तरभारत में वैदिक तथा लौकिक संस्कृतसाहित्य एवं संस्कृत और संस्कृति के प्रचार तथा प्रसार में सतत प्रयत्नशील विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध संस्थान से लगभग सभी परिचित हैं। यह संस्थान लाहौर में डी. ए. वी. कॉलेज के रिसर्च विभाग के कैम्पस में स्थित था। 1947 में भारतविभाजन के बाद लाहौर से विस्थापित होकर साधु आश्रम, होशियारपुर में पुन: स्थापित हुआ। पश्चिमोत्तर भारत में वैदिक- साहित्य के रचनात्मक कार्य को करने वाला यह एकमात्र संस्थान है। हिन्दी के प्रचार और प्रसार में यह सतत प्रयत्नशील है। यहाँ संस्कृत के छात्रों के लिए छात्रावास की व्यवस्था है, जिसमें सभी प्रकार की सुविधाएं प्राप्त हैं। प्रतिसप्ताह वैदिक मंत्रों से यज्ञ करने की प्रथा आज भी संस्थान में है। इस संस्थान को किसी प्रकार की राजकीय सहायता प्राप्त नहीं है। केवल सदस्यता-शुल्क एवं दानी पुरुषों द्वारा समय-समय पर प्रदत्त धन एवं डी.ए.वी. कॉलेज प्रबन्धकर्तृ सभा, नई दिल्ली से ही इसका व्ययभार चलता है। इस प्रकार के स्रोतों से प्राप्त होने वाला धन आज के इस मंहगाई के युग में संस्थान में कार्यरत कर्मचारियों के वेतन के लिए भी पर्याप्त नहीं होता। धन के अभाव के कारण संस्थान में नवनिर्माण तो रुका हुआ ही है। इसके अतिरिक्त 1947 से भी पूर्व के बने हुए इसके पुराने भवन भी इतने जीर्ण हो गए हैं कि वह धीरे-धीरे गिर रहे हैं। अन्दर के सभी कमरों की स्थिति भी दयनीय है। संस्थान के पास इतना धन नहीं है कि उनकी मुरम्मत की जा सके। कारोना काल में संस्थान की अर्थिक स्थिति कंगाली आटा गीला वाली हो गई थी।

उस समय डी.ए.वी. कतृसभा से विशेष सहायता दी गई जिससे संस्थान के कर्मचारियों का वेतन इत्यादि दिया जा सका। अत: दानी सज्जनों से निवेदन है कि वे आश्रम की जीर्ण-शीर्ण इमारतों, अन्दर की सड़कों इत्यादि या अन्य पुराने भवनों की मुरम्मत हेतु यथाशक्ति धन की सहायता प्रदान कर अनुगृहीत करेंगे। जिससे यहां के छात्रावास, सत्संग-भवन आदि की मुरम्मत की जा सके। मुझे आशा ही नहीं, पूर्ण विश्वास है कि विद्याप्रेमी दानी सज्जन इस दिशा में ध्यान देकर अनुगृहीत करेंगे।

दानी सज्जन निम्न प्रकार से बैंक में सीधा धन NEFT द्वारा जमा करवा सकते हैं और इसकी सूचना कार्यालय को दें –

बैंक का नाम	:	**केनरा बैंक, वी. वी. आर. आई., डाकघर साधु आश्रम, होशियारपुर।**
खाता संख्या	:	**S. B. 2719101000001**
IFSC Code No.	:	**CNRB 0002719**

विशेष – : बैंक ड्राफ्ट या चैक द्वारा राशि वी. वी. आर. आई., होशियारपुर के नाम भेजें। संस्थान को भेजी जाने वाली धनराशि 80 जी इन्कमटैक्स 1961 के अधीन करमुक्त है।

निवेदक

इन्द्रदत्त उनियाल

आदरी संचालक

वी. वी. आर. आई., डाकघर साधु आश्रम, होशियारपुर।

सत्संग मन्दिर

संस्थान यज्ञशाला

वी. वी. आर. आई. सोसाईटी, होश्यारपुर (पंजाब) की ओर से प्रकाशक व मुद्रक
प्रो. इन्द्रदत्त उनियाल द्वारा वी. वी. आर. इन्स्टीच्यूट प्रैस, पो. आ. साधु-आश्रम,
होश्यारपुर से छपवा कर, वी. वी. आर. इन्स्टीच्यूट, पो. आ. साधु-आश्रम,
होश्यारपुर-१४६ ०२१ (पंजाब) से २८-६-२०२४ को प्रकाशित।